

\* श्री श्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः \*

स वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोच्चते ।



सर्वोक्तुष्ठ धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का अधिकारीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
भक्ति अधोक्षेत्र की अहेतुकी विज्ञशूल्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि कथा-प्रीति न हो, अम ध्यर्थ सभी, केवल वन्धनकर ॥

वर्ष १ } गौराब्द ४६६, मास—पश्चिमाम १७, वार—प्रद्युम्न { संख्या ५  
मङ्गलवार, ३१ आश्विन, सम्वत् २०१२, १८ अक्टूबर १९५५ }

## श्रीश्रीप्रभुपादपद्म-स्तवकः

[ त्रिरिंडस्वामी—श्रीमद्भक्तिरक्तक—श्रीधर महाराज-कृतः ]

सुजनाद्वुदराधितपादयुगं युगधर्मधुरन्धर-पात्रवरम् ।  
वरदाभयदायक—पूज्यपदं प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१॥  
भजनोज्जितसज्जनसंघर्षति पतिताधिककारणिकैकगतिम् ।  
गतिवद्वितव्यकाचिन्त्यपदं प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥२॥

मैं, कोटि-कोटि सज्जनोंके द्वारा आराधित, कृष्ण संकीर्तनरूप युग-धर्मके संस्थापक, विश्ववैष्णव राजसभाके पात्रराज अर्थात् अधिकारीवर्गोंमें ऐष्टुतम्, निखिल जीवोंके भय दूर करनेवालोंकी भी मनोकामना पूर्ण करने वाले, सर्वपूज्य श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ—अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिःपुज्ञको सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जो भजन-सम्पन्न सज्जन-दृढ़न्दोंके अधिष्ठित हैं, जो पतितज्जनोंके प्रति अति करणामय तथा उनकी एकमात्र गति हैं एवं जो छलियोंके भी छली हैं, उन अचिन्त्य चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ—अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिःपुज्ञको मैं सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥२॥

अतिकोमलकाञ्चनदीर्घतनुं  
तनुनिन्दितहेमसृणालमदम् ।  
मदनावृद्वन्दितचन्द्रपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥३॥

निजसेवकतारकरञ्जिविधुं  
विधुताहित-हुक्तसिहवरम् ।  
वरणागतवालिशा-रान्दपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥४॥

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं  
भुवनेषु विकीर्त्तित-गौरदद्वम् ।  
दयनीयगणार्पित-गौरपदं  
प्रणामामि सदा प्रभु पादपदम् ॥५॥

चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं  
गुरुगौरकिशोरकदास्यपरम् ।  
परमाहत भक्तिविनोदपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥६॥

रघुरूपसनातनकीर्तिधरं  
वरणीतलकीर्तित जीवकविम् ।  
कविराज-नरोत्तमसल्यपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥७॥

अति सुकोमल काञ्चनवर्णवाले सुदीर्घ तनुको मैं  
प्रणाम करता हूँ—जिस तनुके द्वारा स्वर्णमय कमल-  
नालोंकी मतता (सोन्दर्य) भी निन्दित होती है। जिन  
नख-चन्द्रोंकी बन्दना कोटिकोटि कामदेव करते हैं  
एवं जो श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंकी शोभा विस्तार  
करते हैं, अपने प्रभुके उन्हीं पद-नखकी ज्योतिःपुज्ञको  
मैं सदा सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥३॥

जो नक्त्र-मण्डलको रंजित करने वाले चन्द्रकी  
तरह सेवक-मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर उनके चित्त-  
को प्रकुलित रखते हैं, भक्तिहेतुजन जिनके सिंह-  
गर्जनसे भयभीत रहते हैं एवं निरीह व्यक्ति जिनके  
चरण-कमलोंका आश्रय प्रहणकर परम कल्याण लाभ  
करते हैं, उनको प्रणाम करता हूँ; अपने प्रभुके पद-  
नखके ज्योतिः पुज्ञको मैं सदा-सर्वदा प्रणाम करता  
हूँ ॥४॥

जिन्होंने श्रीगौरधामका (श्रीनवदीपधामका) विपुल  
ऐश्वर्य प्रगटित किया है, जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेवकी  
महाउदारताकी कथाओंका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार-  
किया है एवं जिन्होंने अपने कृपापात्रोंके हृदयमें  
श्रीगौरपादपद्माकी स्थापनाकी है, उनको प्रणाम करता  
हूँ; अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिः पुज्ञको मैं सदा-  
सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥५॥

जो चैतन्यमहाप्रभुके आश्रितजनोंके नित्य आश्रय-  
स्थल और जगत्गुरु हैं, जो अपने श्रीगुरुगौरकिशोर-  
के सेवापरायण हैं एवं जो श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके  
सम्बन्धमात्रसे ही परम आदरयुक्त हैं, उनको प्रणाम  
करता हूँ, अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिः पुज्ञको मैं  
सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥६॥

जो श्रीरूप, सनातन और रघुनाथके कीर्तिरूपी  
झण्डेको उत्तोलन कर विराजमान हैं, अनेक लोग इस  
धरणीतलपर जिनको पाणिहडत्य-प्रतिभामय श्रीजीव-  
गोख्यामीसे अभिन्नतनु कहकर प्रसंशा किया करते हैं  
एवं जिनका श्रीलकृष्णादास कविराज तथा ठाकुर  
नरोत्तमसे सल्यभाव है, उनको प्रणाम करता हूँ;  
अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिः पुज्ञको मैं सदासर्वदा  
प्रणाम करता हूँ ॥७॥

कृपया हरिकीर्तनमूर्च्छिधरं  
धरणीभरहारक—गौरजनम् ।  
जनकाधि कृत्सलस्नभ्यपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥८॥

शरणागतकिङ्कुरकल्पतर्म  
तर्हयिक्कृतवै वरदान्यवरम् ।  
वरदेन्द्रगणाचिर्चतदिव्यपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥९॥

परहंसवरं परमार्थपतिं  
पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम् ।  
चतिराजगणैः परिसेव्यपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१०॥

वृषभानुसुतादयितानुचरं  
चरणाश्रित—रेणुधरस्तमहम् ।  
महदद्वुतपावनशक्तिपदं  
प्रणामामि सदा प्रभुपादपदम् ॥११॥

जीवोंके प्रति असीमकृपाकर जो मूर्त्तिमान हरि-  
कीर्तनरूपमें प्रकाशित हैं; जो धरणीके पापभारको दूर  
करनेवाले गौर-पार्षद हैं एवं जो जीवोंके प्रति पितासे  
भी अधिक वात्सल्यके सुकोमल आकर स्वरूप हैं,  
उनको प्रणाम करता हूँ; अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिः  
पुञ्जको सदा सर्वदा प्रणामकरता हूँ ॥८॥

शरणागत किङ्कुरोंके लिये (अभीष्ट प्रदान करनेमें)  
जो कल्पतरुके समान हैं, जिनकी सहिष्णुता और  
उदारता वृद्धोंकोभी लजित करती हैं एवं वरदाताओंमें  
ओष्ठ व्यक्तिभी जिनके दिव्य श्रीचरणकमलोंकी पूजा  
किया करते हैं, उनको प्रणाम करता हूँ; अपने प्रभुके  
पद-नखके ज्योतिःपुञ्जको मैं सदा सर्वदा प्रणाम  
करता हूँ ॥९॥

जो परमहंसकुलके चूडामणि हैं, जो परम पुरुषार्थ  
श्रीकृष्णप्रेमरूप सम्पत्तिके मालिक हैं, पतित जीवोंके  
उद्धारके लिये जिन्होंने संन्यासीका वेश धारण किया है  
एवं ओष्ठ त्रिदण्डी संन्यासियोंका समूह जिनके पाद-  
पद्मोंकी सेवा करता है, उनको प्रणाम करता हूँ;  
अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिःपुञ्जको सदा-सर्वदा  
प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

जो वृषभानुनन्दिनीके परमश्रिय अनुचर हैं, जिनकी  
चरण-रजको मैं अपने मस्तकपर धारण करनेके  
सौभाग्यके लिये अभिमान करता हूँ, उस अद्वैत  
पावनीशक्ति सम्पन्न श्रीगुरुके चरणकमलोंमें मैं  
प्रणाम करता हूँ—अपने प्रभुके पद-नखके ज्योतिः-  
पुञ्जको मैं सदा सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥११॥



## पाञ्चरात्रिक अधिकार

### वैष्णवोंके भेद

भिन्न-भिन्न समयोंमें भिन्न-भिन्न देशोंमें वैष्णवोंका परिचय भिन्न-भिन्न नामोंसे मिलता है। किसी इतिहासकारने उन्हे द्वादश श्रेणियोंमें विभक्त किया है। सत्त्वत, भृकु, भागवत, पाञ्चरात्रिक, वैद्यानस, कर्महीन, अकिञ्चन, साम्प्रदायिक आदि उनके अनेक भेदोंका वर्णन अनेक स्थलोंमें पाया जाता है। पंचोपासनके अन्तर्भुक्त अथवा श्रियासाफिस्टोंके बीच भी वैष्णव कहलाने वाले व्यक्तियोंका अभाव नहीं। किन्तु शेषोंके पञ्चोपासकोंके भीतर वैष्णव कहलाने वाले व्यक्ति निर्विशेष मत माननेके कारण उनमें वैष्णवता का अभाव रहता है—वे वैष्णव विश्वाससे बहुत दूर रहते हैं।

### पाञ्चरात्रिक और भागवत—वैष्णवों केदो प्रधान भेद

वैष्णव भिन्न-भिन्न श्रेणियोंमें विभक्त होने पर भी प्रधानतः इनके दो विभाग हृषिगोचर होते हैं—(१) पाञ्चरात्रिक वैष्णव (२) भागवत वैष्णव। जिनमें अर्चन मार्गकी प्रधानता होती है, वे पाञ्चरात्रिक वैष्णव कहे जाते हैं। और जो भावमार्गका अनुसरण करते हैं, उन्हें भागवत वैष्णव कहा जाता है। श्रीमन्महाप्रभुजीके उपदेशके अनुसार भागवत मार्गीय तथा पाञ्चरात्रिक वैष्णवोंके अनुष्ठानोंमें परस्पर भेद होनेपर भी दोनों ही भगवद्भक्त हैं। पञ्चरात्र और भागवत—दोनोंका लक्ष्य शुद्ध भक्तिसे ही है। श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला में (१६।१६) महाप्रभुजी कहते हैं—

एह 'शुद्ध-भक्ति' इहा हैते 'प्रेमा' हय।

पञ्चरात्रे भागवते एह लक्ष्य क्य ॥

अर्थात्—पञ्चरात्र और भागवत दोनोंमें भक्तिका यही लक्ष्य कहा गया है। इसे ही शुद्ध भक्ति कहते हैं और इसीसे कृष्ण-प्रेम उदय होता है।

### पञ्चरात्रिक अर्थ

'पञ्चरात्र' शब्दसे पंच-ज्ञान विषयक प्रणालीको

समझा जाता है। 'रा' धातुका अर्थ है दान करना। जिस शास्त्रमें पाँच प्रकारके ज्ञानोंका निष्पण किया गया है, उसे 'पञ्चरात्र' कहते हैं। ज्ञानकी वाणियोंको रात्र कहते हैं। इसलिए परिणामगण इस शास्त्रको पञ्चरात्र कहते हैं।

रात्रबा ज्ञान वचनं ज्ञानं पञ्चविधम् स्मृतम् ।

तेनेदं पञ्चरात्रमन्व एवद्विन्ति भनीषिषः ॥

(नारद पञ्चरात्र १।१।१७)

पञ्चरात्रके पंच-ज्ञान ये हैं—(१) सात्त्विक ज्ञान, (२) निर्गुण ज्ञान, (३) सर्वपर ज्ञान, (४) राजसिक ज्ञान, (५) तामस ज्ञान। इनमें राजसिक ज्ञान भृत्यों के योग्य नहीं तथा तामसिक ज्ञान परिणामोंके लिए बांधनीय नहीं है।

### श्रीरामानुजके सम्प्रदायमें अर्थ पञ्चक

श्रीरामानुजके शिष्य कुरेशके पुत्र पराशर भट्ट थे। पराशरके शिष्य वेदान्ती और अनुशिष्य नम्बुर वरद-राज थे। इनके शिष्य पिल्लाई लकाचार्य थे। इन्होंने अर्थपञ्चक नामक एक प्रन्थकी रचना की। अर्थपञ्चक-का हिन्दी अनुवाद श्रीभागवत-पत्रिकामें आगे प्रकाशित किया जायगा। इसमें जीव, ईश्वर, पुरुषार्थ, उपाय और विरोधीत्वरूप—इन पंच स्वरूप-ज्ञानोंके अन्तर्गत प्रत्येकके पाँच-पाँच भेदसे पचीस अर्थोंका निरूपण किया गया है।

### माध्वमतमें भेद-पञ्चक

श्रीमाध्वमतमें तत्त्व-वस्तुके पाँच भेद माने गये हैं। इनमें पंच-ज्ञानका होना अत्यावश्यक समझा जाता है। पंच-भेद ज्ञान ये हैं—(१) ईश्वरका जीवसे भेद, (२) जीवका दूसरे जीवसे भेद, (३) ईश्वरका जड़से भेद, (४) जड़ पदार्थका दूसरे जड़पदार्थसे भेद (५) जीवका जड़से भेद। ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म—इन पाँच विषयोंके ज्ञानसे पुरुषार्थ-ज्ञान प्राप्त होता है।

पञ्च महाभूत, पञ्च सूक्ष्मभूत, पञ्चकर्मनिद्रिय, पञ्च ज्ञानेनिद्रिय और इनसे अतिरिक्त मन, बुद्धि

अहंकार, प्रकृति और पुरुष—इन पाँच पञ्चकोंका शुद्ध ज्ञान भी पञ्चरात्र है। निर्विशेषवादियोंके आगम शास्त्रको भी पञ्चोपासक लोग पञ्चरात्रकी संज्ञा देते हैं।

### सात पञ्चरात्रोंमें पाँच सात्त्विक पञ्चरात्र हैं

नारद पञ्चरात्रके अनुसार पञ्चरात्र सात हैं—  
(१) ब्राह्मा, (२) शैव, (३) कौमार, (४) वाशिष्ठ, (५) कपिल, (६) गौतमीय, (७) नारदीय। ब्रह्मवैवर्त पुराणमें कृष्णजन्म खण्ड १३२ वें अध्यायमें लिखा है कि केवल पाँच पंचरात्रोंमें कृष्णका माहात्म्य वर्णन किया गया है। वाशिष्ठ, नारदीय, कपिल, गौतमीय और सनत्कुमारीय—ये ही पाँच सात्त्विक पञ्चरात्र हैं। इनके अतिरिक्त हयशीर्ष, पृथु, ध्रुव आदि पञ्चरात्रोंके भी आस्तित्व हैं। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंमें भी श्रीगौराङ्ग, नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर, श्रीवास आदि भक्त वृन्द—इन पाँच तत्त्वोंका अर्चन होता है।

### पांचरात्रिक अर्चन और वैदिक भागवतके

#### अनुष्टान पृथक् पृथक् हैं।

पञ्चरात्रोंके अनुष्टान आगम (तंत्र) शास्त्रके अनुसार होते हैं। इसलिए इनमें अर्चनकी प्रथानता होती है। योग्य व्यक्ति अनुष्टानके प्रभावसे योग्यता लाभ करते हैं। योग्य व्यक्ति ही वैदिक अनुष्टान करते हैं। नारद आदि पंचरात्र और वैद-वृत्तका सुपक्ष कल श्रीमद्भागवतका उद्देश्य एक होनेपर भी इनके अनुष्टानोंमें परस्पर भेद है।

### अर्चन प्रधान वैष्णवोंके भेद और उनके लक्षण

शास्त्रमें भागवतोंकी तरह अर्चन प्रधान वैष्णवोंको भी तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है—  
(१) अर्चन प्रधान कनिष्ठ वैष्णव, (२) अर्चन प्रधान मध्यम वैष्णव, (३) अर्चन प्रधान उत्तम वैष्णव शास्त्रमें अर्चन प्रधान कनिष्ठ वैष्णवका लक्षण निर्देश किया गया है—

शंखचक्राशूरु पुरुष धारणाद्यामलक्षणं ।  
तत्त्वमस्करणवैष्णव वैष्णवविभिन्नते ॥

(पांचोत्तर खण्ड)

शंख, चक्र, गदा, पद्म-चिह्न तथा ललाट आदि ऊर्ध्व द्वादश अंगों में हरिमन्दिर पुरुष धारण कर जो अपनेको अप्राकृत विष्णुका दास समझते हैं एवं वैसे हरिमन्दिर-चिह्नोंको देखकरजो नमस्कार करते हैं उन्हें वैष्णव कहते हैं।

### अर्चन प्रधान मध्यम वैष्णवोंका लक्षण,—

तापः पुरुषः तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।

अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तिहेतवः ॥

(पांचोत्तर खण्ड)

हरिताप, हरिपुरुष, विष्णुदास्यसूचक नाम, विष्णुमन्त्र और विष्णुयाग—इन पञ्च संस्कारोंसे संस्कृत होकर वैष्णव लोग परम एकान्तिक महाभागवत होनेके योग्य बन जाते हैं। अर्थात् वे मध्यम वैष्णव-अधिकार प्राप्त करते हैं।

### अर्चन प्रधान उत्तम वैष्णवोंका लक्षण,—

तापादि पञ्चसंस्कारी नवैज्याकर्मकारकः ।

अर्थ-पञ्चकविद् विप्रो महाभागवतः स्मृतः ॥

(पांचोत्तर खण्ड)

ताप, पुण्ड, नाम, मन्त्र और याग—इन पञ्च संस्कारोंसे युक्त होकर मध्यम वैष्णव-ब्राह्मण नव प्रकारके इज्याकर्म (पूजा) करनेके बाद अर्थ पञ्चकका रहस्य ज्ञात होने पर महाभागवत कहे जाते हैं। उस समय वे पञ्चरात्रिक दीक्षादाता गुरुका कार्य करनेमें समर्थ होते हैं।

### श्रीगुरुके लक्षण

शास्त्रोंमें गुरुके लक्षण बतलाये गये हैं। हरिभक्ति-विलास नामक ग्रन्थमें उन शास्त्रोंके वचनोंको इस प्रकार उठात किया गया है—

महाभागवत-श्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुनृणां ।

सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः ॥

(हरिभक्तिविलास ११३६ छत्र पादावाक्य)

ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात् सर्वेष्वनुग्रहं ।

(हरिभक्तिविलास ११३६ छत्र नारद-पञ्चरात्र वाक्य)

अध्यात्मविद्व्रह्मवादी वैदशास्त्रार्थकोविदः ।

उद्गतः वैव संहस्रं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः ॥

(हरि भक्ति विलास ११३८ छत्र अगस्त-संहिता-वाक्य)

तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुहरुचयते ।  
देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निस्पृहः ॥  
अचान्तान्त्वयः शुद्धः स्वोचिताचारतपरः ।  
आश्रमी क्रोधरहितो वेदवित् सर्वशास्त्रवित् ॥  
(हरि भक्ति विलास १३२ छत्तमन्त्यमुक्तावलो-वाक्य)  
धीमाननुदत्तमतिः पूर्णोऽहन्ता विमर्शकः ।  
सगुणोऽचान्त्यमु कृतधीः कृतज्ञः शिष्यवस्तलः ॥

[महाभगवत् श्रेष्ठ अर्थान् अरोप वैष्णवधर्मरत  
श्रीभगवन् महात्म्य आदिका ज्ञाता ब्राह्मण मनुष्य-  
मात्रके गुरु होते हैं। ये मनुष्योंमें श्रीहरिकी तरह  
पूजनीय हैं।

सर्वं गालज्ञं अर्थान् पञ्चात्र-वेधानमें करे गये  
पञ्चकालोंके ज्ञाता ब्राह्मण सभी वर्गोंको मन्त्रादि  
प्रदानके द्वारा कृपा करेंगे।

जो आत्म विषयक ज्ञानपे युक्त हैं, जो वेदोंके  
अध्यापक, वेदों के अर्थ समृद्धके सुविडित हैं, एवं जो  
मन्त्र-उद्घार तथा मन्त्र-संहार करनेमें समर्थ हैं, वे  
उत्तम ब्राह्मण हैं।

तपस्वी, सत्यवादी और गुहीथ गुह करे जाने  
हैं। वे देवताके उपासक, शान्त और विषयोंमें खुश  
शून्य होते हैं। उनके वंशमें कभी भी पातित्य आदि  
दोष उत्पन्न नहीं होते हैं। वे स्वप्नं शुद्ध, अपने अधिकारके  
उचित आचारोंके पालनमें तप्त, आश्रमयुक्त,  
क्रोध-रहित, वेदज्ञ एवं सर्वगाम्भीर्यता होते हैं।

वे बुद्धिमान्, शिष्ट-बुद्धि, पूर्णदाता अर्थान्  
आकृत्ता शून्य, अहिनक, विचारवान्, वात्सल्यादि  
गुणयुक्त, भगवान्की प्रतिमाओंकी पूजा करनेमें  
कृतनिश्चय, कृतज्ञ और शिष्टोंके प्रति स्नेहयुक्त  
होते हैं।

महाकुलप्रसूतोऽपि सत्यवज्ज्ञेषु दीक्षितः ।  
सहस्रशालाध्यायो च न गुरुः स्याद्वैष्णवः ॥  
गृहीतविष्णुदीक्षाको विष्णुपूजापरो नरः ।  
वैष्णवोऽभिहितोऽभिज्ञैरितरोऽस्माद्वैष्णवः ॥

(हरि भक्ति विलास ११४०, ४१ छत्त पाद वाक्य)

[अर्थात्—ब्राह्मण श्रेष्ठकुलमें जन्म ग्रहण करने  
पर भी, समस्त यज्ञोंमें दीक्षित होनेपर भी एवं सहस्र-

शास्त्राभ्योंका अध्ययन करनेपर भी यदि वैष्णव नहीं  
हैं तो वे गुरु नहीं हो सकते। जिन्होंने विष्णुदीक्षा  
ग्रहण की है तथा विष्णुकी पूजामें तत्पर रहते हैं,  
परिडत लोग उन्हें ही वैष्णव कहते हैं, उनके अतिरिक्त  
और सभी अवैष्णव हैं।

### नवेऽया-कर्मकी संज्ञा और जीवगोस्वामी

श्रीजीवगोस्वामी प्रमुने भक्तिसंदर्भमें नवेऽया  
कर्मकी संज्ञाके सम्बन्धमें शास्त्रोंने इस श्लोकको उद्धृत  
किया है:—

अचर्चन मन्त्रं पठ । वागो चोमो हि वन्दन ।  
नामसंकोचनं सेवा तदिच्छ्वरहनं तथा ॥  
तदीशाश्रवेऽया नववा निवो शुभे ।  
नवकर्मविशारदेया दिवाणो सत्तं स्वता ॥

(भक्ति सन्दर्भ २६८, छृत पद्मोत्तर-वाक्य)

(१) अ चर्चन (२) मन्त्र पाठ (३) योग (४) याग  
(५) वन्दन (६) नामसंकोचन (७) सेवा (८) चिह्न  
द्वारा अहन (९) वैष्णवपूजा। हे शुभे ! इन नी कर्मों  
को हृत्या करते हैं। यदि ब्राह्मण इन नी प्रातरके  
कर्मोंको करे तो उससे सर्वदा ही भगवान्का अर्चन हो  
जाता है।

### अर्थ-पञ्चककी व्याख्या और श्रोजोव गोस्वामी

श्रीजीवगोस्वामीने अर्थ-पञ्चक ही व्याख्यामें इम  
प्रकार लिखा है:—

अर्थपञ्चकवित्स्वत्र उपास्यः श्रीभगवान् तत्परम्  
पदं तत्प्रत्यं तन्मन्त्रः जीवात्मा चेति पञ्चतत्त्वज्ञात्तत्त्वं  
तत्त्वं हयशीर्षे विवृतं संक्षिप्य लिख्यते:—

एक एवेश्वरः कृष्णः सत्यदानन्दविग्रहः  
पुरुदरीक विशालाकृष्णच्छ्रीरितमूर्द्धजः ॥  
वैकुण्ठाभिपतिर्देव्या नीलया चित्स्वरूपया ।  
स्वर्णकान्त्या विशालाकृष्ण स्वामावाद् गाइमात्रितः ॥  
नित्यः सर्वगतः पूर्णो व्यापकः सर्वकारणम् ।  
वेदगुह्यो गमीरात्मा नानाशत्योदयो नव ॥ इत्यादि ।

तत्परम् पदः—

स्थानतत्त्वमतो वच्ये प्रकृतेः परमव्ययं ।

शुद्धसत्त्वमयं सर्पचन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥

चिन्तामणिमयं साचात् सचिच्चदानन्दलक्षणं ।  
आधारं सर्वभूतानां सर्वप्रलय वर्जितम् ॥

तत्त्वद्रव्यं—

द्रव्यतत्त्वं शुगु ब्रह्मन् प्रवद्यामि सामस्तः ।  
सर्वभोगप्रदा यत्र पादपाः कल्पपादपाः ॥  
भवन्ति तादशा लल्यस्तत्त्वज्ञापि तादशं ।  
भन्धस्तपं स्वादुरुपं द्रव्यं पुष्पादिकञ्च यद् ॥  
हेयांशानामभावाच्च रसरूप भवेद्विद्वत् ।  
ददग्वीजज्ञैव हेयांशं कठिनांशञ्ज यज्ञवेत् ॥  
सर्वं तद्वैतिकं विद्वि न ज्ञाभूतमयज्ञ यत् ।  
रसस्य योगतो ब्रह्मन् भौतिकस्वादुवज्ञवेत् ॥  
तस्मात् साध्यः रसो ब्रह्मन् रसः स्याद् व्यापकः परः ।  
रसवज्ञैतिकं द्रव्यमय स्याद्सरुपकमिति ॥

तत्त्वमन्त्रः—

वाच्यतत्त्वं वाचकत्वज्ञ देवतन्मन्त्रयोरिह ।  
अभेदेनोच्यते ब्रह्मन् तत्त्वविद्विविचारितः ॥ इत्यादि ।

जीवात्मा—

महत् सागरसंयोगे तरङ्गात् कणिका यथा ।  
जायन्ते तत् स्वरूपाश्च तदुपाधिसमाहृताः ॥  
आश्लेषादुभयोस्तद्वदात्मानश्च सद्ब्रह्मः ।  
संज्ञाताः सर्वतो ब्रह्मन् मृत्तामृत्तं स्वरूपतः ॥  
इत्याद्यपि किन्तु भगवदाविर्भावादिपु स्वस्वोप-  
सनाशास्त्रनुसारेण अपरोपिविशेषः कश्चिज्ज्ञेयः ।

[अर्थपञ्चक—(१) उपास्य श्रीभगवान्, (२) भगवान् का परमपद (धाम), (३) द्रव्य, (४) मन्त्र, (५) जीवात्मा—इन पञ्च तत्त्वोंको जो जानते हैं, वे अर्थपञ्चकके ज्ञाता हैं। हयशीर्ष पञ्चरात्रमें इस विषयका वर्णन किया गया है। यहाँ केवल संक्षेपमें लिखा जाता है—

(१) भगवान्—कृपणही एकमात्र ईश्वर हैं। उनका विग्रह सचिच्चदानन्द, नेत्र कमलके सदृश विशाल तथा केश अत्यन्त सुन्दर कृपणवर्ण हैं। वे वैकुण्ठपति श्रीकृष्ण, विशाल नेत्रोंवाली, स्वर्णकान्तिमयी, चिरस्वरूपा लीलादेवीके द्वारा स्वभावतः हृष्टरूपसे आलिंगित हैं। वे नित्य, सर्वगत, पूर्ण, व्यापकसर्वकारण, वेदोंके निगद, तत्त्व, स्वरूपतः गुह्य, नाना

प्रकारकी शक्तियोंके आश्रय और नित्य नये-नये भावों से युक्त इत्यादि हैं।

(२) परमपद या धाम तत्त्व—इसके बाद धाम तत्त्वके सम्बन्धमें कहूँगा। वह प्रकृतिसे परे, अवैद्य, शुद्धसत्त्वमय एवं कोटि-कोटि चन्द्र-सूर्यकी प्रभाके समान दीपिशाली है। यह स्थान चिन्तामणिमय, साक्षात् सचिच्चदानन्दस्वरूप, सर्वभूतोंका आधार और सर्वप्रकारके प्रलयोंसे बचित है। इत्यादि ।

(३) द्रव्य—हे ब्रह्मन् ! मैं अभी संक्षेपमें द्रव्य तत्त्वका वर्णन करता हूँ। आप इसे अवण करें। ऊपर कहे गये स्थानमें समस्त भोगोंको देनेवाले कल्पबृक्षही एकमात्र वृक्ष हैं। वहाँकी लताएँ भी उसी प्रकार समस्त भोगोंको प्रदान करने वाली हैं तथा उनके फल पूल भी वैसे ही भोगप्रद हैं। वहाँ सुगन्धयुक्त सुस्वादु द्रव्य, पुष्पादि जिनमें भी पदार्थ हैं, उनका कोई भी अंश हेय (त्वागने योग्य) न होनेके कारण सभी रसस्वरूप हैं। छिलका, बीज एवं कटिन अंश—ये हेय अंश होते हैं, और ये सभी भौतिक हैं। इसके संयोग होनेपर ही भौतिक वस्तु स्वादुभावयुक्त होती है। अतएव हे ब्रह्मन् ! रसही परम साध्य एवं व्यापक वस्तु है। साधारणतः भौतिक द्रव्य रसयुक्त होता है। परंतु वैकुण्ठमें चिन्मय द्रव्य-समूह साक्षात् रस स्वरूप होता है।

(४) मंत्र—अब मंत्र तत्त्वके सम्बन्धमें कहा जा रहा है—हे ब्रह्मन् ! देवता और उसके मन्त्रमें वाच्य और वाचकका सम्बन्ध होता है। देवता वाच्य एवं मंत्र उसका वाचक होता है। किंतु तत्त्वविद् व्यक्ति विचारके साथ मंत्र और देवताको अभिन्नरूपसे ही वर्णन करते हैं। इत्यादि ।

(५) जीव तत्त्व—हे ब्रह्मन् ! वायु और समुद्रके संयोगसे उत्पन्न तरंगोंसे जिस प्रकार तत्त्वरूप और तदीय उपाधियुक्त सहस्र-सहस्र जलकणोंकी उत्पत्ति होती है, उसीप्रकार दोनोंके सम्मिश्रणसे मूर्च्छ और अमूर्च्छ सहस्र-आहस्र आत्माएँ प्रकाशित होती हैं। इत्यादि ।

किंतु अपने २ उपासना शास्त्रके अनुसार श्रीभग-

बानके आविंभाव आदि विषयमें इसके अतिरिक्त दूसरे विशेष भावभी जानने योग्य हैं । ]

### पाठ्चरात्रिक दीक्षासे वर्तमान जन्ममें ही ब्राह्मणत्व लाभ होता है

पाठ्चरात्रिक विधानके अनुसार मध्यम वैष्णवके मन्त्र प्रहणरूप अनुष्ठानके बाद उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है । इसके सम्बन्धमें शास्त्रोंके निर्देश हैं—

(क) यथा काञ्चनतां याति कौस्यं रस विधानतः

यथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

(तत्त्वसागर)

[जिस प्रकार किसी विशेष रसायनिक प्रक्रिया द्वारा कौंसा सोना हो जाता है उसी प्रकार दीक्षा विधानसे (वैष्णवी दीक्षासे) नरमात्र विप्रत्व लाभ करते हैं । ]

[ख] यस्य यक्षलक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णमित्यञ्जकं ।  
तदन्यत्रापि इश्यते तत्त्वे नैव विनिर्दिशेत् ॥

[श्रीमद्भा. ७।१।३५]

[मनुष्योंके वर्ण सूचक जो लक्षण कहे गये हैं, उनमें जिस वर्णका लक्षण जिस व्यक्तिमें मिले, उस व्यक्तिका वही वर्ण निर्देश करना चाहिये । केवल जन्मसे ही वर्णका निर्देश नहीं होता । ]

[ग] भक्तिरष्ट विद्या द्वे या यस्मिन् स्त्वेऽपि वर्त्तते ।  
स विवेन्द्रो मुनिश्चेष्टः स ज्ञानी स च पणिडतः ॥

(पद्म पुराण)

[यदे म्लेच्छ कुलमें उत्पन्न व्यक्तिमें भी यह आठ प्रकारकी भक्ति पाई जाय तो वही विप्र-श्रेष्ठ, मुनि-श्रेष्ठ, ज्ञानी और पणिडत है । ]

[व] “कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ।”

[म. अनु. प. १४३।५०]

[जन्म, संस्कार, वेद अध्ययन और वंश—ये द्विजत्वके कारण नहीं, वृत्त (आचार) ही एकमात्र द्विजत्वका कारण है । ]

‘र । याति वैश्यः ज्ञानितां ब्रजेत् ॥’

(म. अनु. प.)

[इन शुभ कर्मोंका आचरण करनेसे शद्र ब्राह्मणत्व लाभ करते हैं तथा वैश्य भी ज्ञानिय हो जाते हैं ।

अतः वर्तमान जन्ममें ही पाठ्चरात्रिक अधिकारके अनुसार दीक्षा लाभ करनेसे ब्राह्मणत्व लाभ हो जाता है, इसमें कोई भी वाधा नहीं दे सकते हैं । किसी-किसीका विचार है कि पाठ्चरात्रिक महा भागवत्व जन्मांतरके ऊपर आपेक्षित है । किंतु शास्त्र-समूह, श्रीमद्भागवत अथवा श्रीमन्महाप्रभु वैसा नहीं कहते ।

—३७ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

## ज्ञान

### ज्ञान किसे कहते हैं ?

ज्ञान किसे कहते हैं ?—इस प्रश्नके बहुतसे उत्तर मिलते हैं । कोई कहते हैं कि मानवोंकी हन्त्रियाँ विषयोंको स्पर्शकर जो अनुभूति लाभ करती हैं, उसे ज्ञान कहते हैं । कोई कहते हैं कि आष्टांग-योग सिद्धिसे जो अनुभूतियाँ होती हैं, उसे ही ज्ञान कहते हैं । किसी-

किसीका कहना है—एकमात्र ब्रह्मकी अनुभूति ही ज्ञान है । किन्तु पाश्चात्य पणिडतोंने ज्ञानको दो भागोंमें विभक्त किया है । वे एक भागको Knowledge एवं दूसरे भागको Wisdom कहते हैं । वास्तवमें इन लोगोंके द्वारा ‘ज्ञान’ शब्दका प्रकृत और सम्पूर्ण अर्थ प्रकाश नहीं होता । ये खण्ड अर्थ लेकर ही बाद विवादमें अपना समय बिताते हैं ।

## ज्ञानके अभावमें ज्ञेयवस्तु निरर्थक है

वस्तुतः ज्ञान ही जगतमें एकमात्र तत्त्व है। ज्ञेय वस्तु ज्ञानसे पृथक होनेपर भी ज्ञानके अभावमें ज्ञेय वस्तु वेकार है। अतः सभी देशोंमें सभी शास्त्रोंमें ज्ञानका असीम माहात्म्य वर्णन किया गया है।

## ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाताका परस्पर सम्बन्ध

'ज्ञान' शब्दका उल्लेख करनेसे ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाताका पृथक-पृथक् भाव मानस पटल पर उदित हो जाता है। जो अनुभव करते हैं वे ज्ञाता हैं। जो वस्तु अनुभूत होती है, वह ज्ञेय है। अनुभव करनेके कार्यको ज्ञान कहते हैं। फिर वही ज्ञाता दूसरों के द्वारा अनुभव किये जाने पर ज्ञेयकी श्रेणीमें आ जाता है। ज्ञान भी दूसरे ज्ञानसे अनुभव हो, तो प्रथम ज्ञान ज्ञेयकी श्रेणीमें आ जाता है। उसी तरह ज्ञेयवस्तु भी जब किसी दूसरी वस्तुका अनुभव करती है, तो उस समय वह ज्ञाता हो जाती है। अतः ज्ञान स्वरूपतः एक और सम्बन्धतः तीन वस्तु है।

## 'सम्बन्धको' छोड़कर केवल 'स्वरूपका' विचार

### ग्रहण करनेसे अनर्थ

स्वरूपका सम्मान करते हैं, किन्तु सम्बन्धको हेय समझते हैं, यह अन्याय है। क्योंकि स्वरूप मात्रमें उनका सम्बन्ध-भाव नित्य होता है। एक अखण्ड स्वरूप तो स्वीकार करते हैं पर सम्बन्धोंको अस्वीकार करते हैं। इससे तत्त्वकी अपूर्णता रह जाती है। इस विषयको सुंदररूपसे न समझनेके कारण ही जीवोंके हृदयमें मायावाद, विवर्तवाद या केवलाद्वैतवादरूप बड़े बड़े अनर्थोंकी सृष्टि होती है। स्वरूप और सम्बन्ध दोनों ही युगपत् नित्य हैं। अतएव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता स्वरूपतः एक अखण्ड तत्त्व होकर भी सबदा सभी स्थानोंमें पृथक-पृथक् रूपसे वर्तमान हैं। ऐसा विपरीत कार्य केवल भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के प्रभावसे ही संघटित होता है। जीवोंके ससीम ज्ञानसे यह विषय उपलब्ध नहीं होता।

## जीवोंमें-ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृत्व

परमेश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप हैं। जीव सीमाविशिष्ट खण्ड-ज्ञानस्वरूप है। परमेश्वरका ज्ञान हम

लोगोंके लिये आलोच्य नहीं, किन्तु जीवोंका ज्ञान हमारे लिये आलोच्य है। अतएव हम जीवोंके ज्ञान की आलोचना कर दिखलायेंगे कि जीवोंमें ज्ञान होग और परिज्ञातृत्व नित्य वर्तमान रहते हैं।

## बद्ध और मुक्त जीवोंमें बद्ध जीवका

### ज्ञान ही आलोच्य है

जीवोंके ज्ञान तीन प्रकारके होते हैं। जीव जो कुछ अनुभव कर सकते हैं उसे जीव-ज्ञान कहते हैं। जीव दो प्रकारके हैं—बद्ध और मुक्त। मुक्तजीव परमेश्वरकी कृपा लाभकर अपना अनुभव राख्य कितना विस्तृत कर सकते हैं—हम उसे विचार करनेमें समर्थ नहीं हैं। केवल बद्ध जीवोंके अनुभव सम्बन्ध में हम विचार कर सकते हैं।

## स्थूल ज्ञान और लिंग (सूक्ष्म) ज्ञान चिन्मय नहीं हैं

बद्ध जीवोंमें तीन तरहकी पृथक-पृथक सत्ताएँ हैं—(१) जीवका स्वरूप (२) लिंग-रूप (३) स्थूल-रूप। स्थूल सत्तामें जीव पञ्च इंद्रियोंसे—चक्र कर्ण, नासिका, जिङ्गा और त्वक् से ज्ञान संप्रह करता है। पाँचों इंद्रियों अपने अपने विषयोंका स्पर्श कर जो ज्ञान संप्रह करती है, वह स्थूल-ज्ञान है। वही स्थूल-ज्ञान अंतरेंद्रिय मनके पास लाये जानेपर मन उसपर संकल्प-विकल्प, गौरव-लाघव आदि बुद्धिसे कल्पना और विभावनाद्वारा अनेक तरहके जो नया-नया ज्ञान संप्रह करता है, उसे लिंगसत्ताका ज्ञान कहते हैं। योग सिद्ध पुरुष सूक्ष्म जगतका जो रहस्य युक्त ज्ञान प्राप्त करते हैं वह भी जीवके लिंग या सूक्ष्म सत्ता का ही ज्ञान है। स्थूल और लिङ्ग स्वरूपके सभी ज्ञान प्राकृत होते हैं—चिन्मय नहीं। यही कारण है कि योगी लोग चिन्त जगत्का संवाद संप्रह करनेमें असमर्थ होते हैं। इनका ज्योतिर्मय 'विशेष' सूक्ष्म जगत्की ही सम्पत्ति है। Astral-Phenomena, और विभूति अर्थात् अणिमा लधिमा आदि ऐश्वर्य—ये सभी लिंग (सूक्ष्म) जगत्में ही आबद्ध रहते हैं। इसके साथ चिन्त जगत्का कोई निकटतम सम्बन्ध नहीं होता।

## जीवोंका स्वरूप-भूत ज्ञान ही चिन्मय आर आत्मतत्त्व-ज्ञान है

जीवोंके स्वरूप-सत्तामें जो ज्ञान है, एवं वहाँ जो ज्ञान उदय होता है, वही चित् जगत् सम्बन्धी ज्ञान है। अष्टाङ्ग योग, ज्ञानयोग आदि योगोंसे उस ज्ञानका कोई उपकार नहीं होता। जीवोंके स्वरूप-सत्ताभूत ज्ञानका नाम ही आत्मतत्त्व-ज्ञान है। वह दो प्रकारका होता है—स्वभावज और प्रसादज। जीव-सत्ताके स्वभावसे जिस ज्ञानका उदय होता है, वही जीवोंका स्वभावज ज्ञान है। लिंगसत्ता या स्थूल सत्तासे वह ज्ञान नहीं होता है।

### स्वभावज ज्ञान—

ईश्वर और जीव एकजातीय वस्तु हैं, अतः उनका स्वभाव या धर्मभी एकजातीय होता है।

जीव परम चैतन्य वस्तुका एक कणमात्र है। अतः परमचैतन्यके स्वभावका थोड़ासा परिचय जीव-स्वभावमें पाया जाता है। स्वभावका ही दूसरा नाम धर्म है। परमचैतन्य और जीवोंके धर्मोंमें एकता है। भेद केवल परिमाणमें है। जो धर्म पूर्ण और असीम-रूपसे परमचैतन्यमें (भगवान्‌में) नित्य वर्तमान रहता है, वही धर्म परमाणु परिमाणमें जीवोंमें भी नित्य वर्तमान रहता है। ईश्वर और जीव एक जातीय वस्तु हैं, सुतरां उनका धर्मभी एकजातीय होता है। लिंगधर्म या स्थूलधर्म ईश्वरमें नहीं होता, अतः जीवोंमें भी नहीं होता है। स्थूल-शरीरभूत-धर्म या लिंग-शरीरभूत-धर्म बद्रजीवोंका केवल औपाधिक धर्म है—स्वभाव नहीं। चित्-स्वरूप जीव स्वप्रकाश वस्तु है। लिंग-भूत मन, बुद्धि अहङ्कार द्वारा वह प्रकाशित नहीं होता। स्थूल शरीरके इन्द्रिय, चन्द्र, सूर्य या अग्निके आलोक द्वारा वह प्रकाशित नहीं होता। अतः स्थूल इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञान अथवा मन, बुद्धि और अहङ्काररूप लिंगशरीरका अनुभूत ज्ञान, भगवान् या जीवको कभी भी प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं होसकता। जीवका स्वभावभूत ज्ञान ही जीवके स्वरूपका परिचय देनेमें समर्थ होता है।

## स्थूल और लिंगशरीर दूरीभूत होनेसे स्वरूपज्ञान उदय होता है

राखसे ढकीहुई आग जिसतरह देखी नहीं जाती, किन्तु राख हटते ही अपने उत्ताप और आलोक द्वारा स्वयं प्रकाशित हो पड़ती है, उसी प्रकार जीवोंके स्थूल और लिंगशरीर दूर होनेपर जीव-स्वरूप स्वयं प्रकाशित हो पड़ता है। स्थूल और लिंग अवरण-रूप राखकी दो तहे जीवरूप अग्निको आच्छादित कर रखी हैं। जबतक ये दोनों तहें दूर नहीं होतीं, उस-समय क्या जीवका कोई परिचय है या नहीं? हाँ, है। राखसे ढकी हुई आगके निकट बैठनेसे जिस प्रकार थोड़े परिमाणमें गर्मी पायी जाती है, उसी प्रकार दो तहों द्वारा ढके रहने पर भी जीव थोड़ा-थोड़ा अपना परिचय दिया करता है।

### बद्र अवस्थामें जीवका अपना शुद्ध परिचय

बहु परिचय इस प्रकार है—

(१) मैं स्थूल और लिंग जगत्से एक अलग व्यक्ति हूँ।

(२) मेरा सम्बन्ध, मेरी आशा, मेरा स्वास्थ्य और मेरी स्वच्छन्दता इस स्थूल और लिंग जगत्से परे किसी दूसरी अवस्थामें हैं।

(३) मैं एक स्वतन्त्र सत्ता होनेपरभी किसी बहुद् स्वतन्त्र सत्ताके अधीन हूँ।

(४) मैं स्वभावतः उस बहुद् स्वतन्त्र सत्ताकेद्वारा मर्वदा आकृष्ट हूँ।

(५) मैं किसी अपराधके कारण इस अस्वच्छन्द अवस्थामें लाया गया हूँ।

(६) मुझे उस अपराधको क्षयकर अपनी शुद्ध अवस्था लाभकरना आवश्यक है।

(७) केवल विशुद्ध प्रीति-सुख ही उस अवस्थाकी पहचान है।

(८) मैं स्वयं जुद्र हूँ, अतः शक्तिहीन हूँ। मैं अपने परम कान्तके (भगवान्‌के) आश्रयमें रहकर उनकी सहायतासे त्रल प्राप्त करूँगा।

(६) मैं अत्यन्त दूर पड़ा हूँ, किन्तु हमारे कान्त अपनी अधिन्य शक्ति के कारण सर्वदा ही हमारे निकट हैं।

(७) हमारी वर्तमान अवस्था—स्थूल और लिंग शरीर से आच्छादित होनेसे दुःखपूर्ण है।

स्थूल और लिंग शरीर का ज्ञान अपूर्ण और अशुद्ध होता है, अतः पग-पग पर उसमें सम्प्रदै होनेसे तर्क उपस्थित होता है। यह तर्कपूर्ण ज्ञान (अज्ञान) वलपूर्वक आत्माके स्वाभाविक ज्ञानको पराजय कर उसका अनादर करता है। भाग्यवश साधुसंग एवं दूसरी दूसरी सुकृतियोंका बल पाकर जब आत्मज्ञान बलवान् हो उठता है, तब स्थूल और लिंग शरीर का ज्ञान दुर्बल होकर निश्चेष्ट हो जाता है।

### प्रसादज ज्ञान

प्रसादज ज्ञान दो तरह का होता है,— (१) भगवन्-प्रसादज ज्ञान और (२) भक्त प्रसादज ज्ञान

#### (१) भगवन्-प्रसादज ज्ञान अर्थात् भगवान्की

#### कृपासे उत्पन्न ज्ञान

शुद्ध भक्ति साधना द्वारा परमेश्वर को प्रसन्न करनेसे, वे कृपाकर जीवको अनन्त ज्ञान प्रदान करते हैं। योगबल अथवा अपने इन्द्रियोंके बलसे अनन्त कालमें जो ज्ञान लाभ होता है, वह भगवान्‌की कृपा द्वारा प्राप्त ज्ञानके एक कणके भी चराचर नहीं होता। भगवान्‌की कृपासे भक्त अप्राकृत ज्ञान-भण्डारका सभ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। योगी और प्राकृत परिषद्वजन बहुत परिश्रम करके जितना भी ज्ञान-अर्जन कर्यों न करें, वे सभी ज्ञान प्राकृत होते हैं। योगियोंका चरम प्राप्त्य—कैवल्य होता है।

कैवल्य प्राकृत ज्ञानकी शेष सीमा है, यह निश्चित है, किन्तु फिरभी वह अप्राकृत ज्ञान नहीं। उस कैवल्य अवस्थाको भेदकर उस पार जाने पर जीव चिद् राज्य की विचित्रता देख पाता है। वहाँ दृच्छने पर जीव अप्राकृत ज्ञानका आख्यादन पाता है। जीव अपनी चेष्टासे कैवल्यको भेद नहीं कर सकता। भगवान्‌की कृपा विना कैवल्यको पार करना कठिन है।

#### (२) भक्त-प्रसादज ज्ञान अर्थात् भक्तकी कृपासे प्राप्त ज्ञान—

भक्त प्रसादज ज्ञानभी अत्यन्त दुर्लभ होता है। जो भक्त भगवान्‌की कृपासे अपने स्वाभाविक आत्म ज्ञानको समृद्ध कर सम्पूर्ण भगवन्-प्रसादज ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे भक्त अपनी शक्ति संचारके द्वारा अपने कृपापात्र जीवको उस अप्राकृत ज्ञान भण्डारका अधिकारी बना सकते हैं। ऐसे भक्तोंके संग जीवोंके लिये दुर्लभ होता है, सुनतां भक्त-प्रसादज ज्ञान लाभ करना सभी जीवोंमें सुगम नहीं होता।

#### ज्ञानके भेद—

उपसंहारमें हमारा वक्तव्य यह है कि ज्ञानके तीन भेद होते हैं:—

(१) इन्द्रियोंसे संप्रदृष्ट किया हुआ स्थूल-ज्ञान।

(२) योग द्वारा प्राप्त लिंग-ज्ञान।

(३) जीवोंके स्वरूप-सत्त्वाका अप्राकृत-ज्ञान।

(४) इन्द्रियोंसे संगृहीत स्थूल-ज्ञान इस स्थूल

शरीरके नष्ट होनेके साथ-ही-साथ नष्ट हो जाता है। पदार्थ-तत्त्व-विद्यासे जो ज्ञान प्राप्त किये जाते हैं उन सभी ज्ञानोंकी वही गति होती है। स्थूल-ज्ञानी जितना भी अहंकार कर्यों न करें, मरनेके साथ ही उनका अहंकार और अहंकारके विषय सभी नष्ट हो जाएंगे। इस जुद्ध अहंकारके वशमें होकर वे जो अप्राकृत ज्ञानका तिरस्कार करते हैं, वह केवल उनके यथार्थ ज्ञानके अभावसे उत्पन्न उपद्रव विशेष है।

(५) योगद्वारा प्राप्त लिंग ज्ञानकी सीमा लिंग-जगत्‌की सीमा तक ही काम आता है। कर्मफलके अनुसार जीव जबतक लिंग शरीरके वशमें रहता है, तभी तक इस ज्ञानका बल रहता है। लिंग शरीर नष्ट होने पर अर्थात् जब मुक्ति उपस्थित होती है, तब योगियों का ऐश्वर्य ज्ञान उस समय कहाँ चला जाता है? अतः योग द्वारा प्राप्त ज्ञानकी भी असीमता नहीं, उसकी भी एक सीमा होती है।

(६) जीवोंके स्वरूप-सत्त्वाका अप्राकृत-ज्ञान ही नित्य, असीम और अनन्त होता है। उसी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना जीवका कर्तव्य है।

श्रीब्यासदेवके प्रति श्रीनारदका ज्ञानोपदेश  
नारदजीने श्रीब्यासदेवको उपदेश दिया है:—

तस्यैव हेतोः प्रयत्नेत कोशिदो ,  
न लम्बते यद्भ्रमतामुपदर्थः ।  
तदलम्बते दुःखवदन्यतः सुखं ,  
कालेन सञ्चर्त्र गभाररहसा ॥

( श्रीमद्भा० १२।१८ )

अतएव हे ब्यास ! विचारशील व्यक्ति उस तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए कोशिश करेंगे, जो ज्ञान इस प्राकृत जगत्‌में ऊँच-नीच सभी स्थानोंमें भ्रमण कर हृदने पर भी नहीं पाया जाता । प्राकृत जगत्‌में जो

सुख वर्तमान है वह अति बलवान् कालके द्वारा परिचालित होकर दुखकी तरह बिना चेष्टासे भी पाया जाता है ।

**श्रीमद्भागवत ही अप्राकृत ज्ञानप्रद ग्रन्थ है**

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही उस स्वानुभूत अप्राकृत-ज्ञानको देने वाला ग्रन्थ है । अतएव श्रीमद्भागवतकी शिक्षा ही समस्त श्रुतियोंकी सार शिक्षा है । जीवोंके स्वरूप सत्ताका अप्राकृत-ज्ञान लाभ करनेकी यदि इच्छा हो, तो श्रीमद्भागवत प्रथमें जिस अप्राकृत विचित्रताका वर्णन किया गया है, उसमें अप्राकृत ज्ञान-भण्डार की खोज कीजिये ।

— ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर,

## मायावादकी जीवनी

[ पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या ४, पृष्ठ ८१ के आगे ]

### बुद्धका शून्यवाद

प्रज्ञापारमिता सूत्रके सोलहवें सूत्रमें भी इसी प्रकार देखा जाता है—

“सुदुर्बोधासि मायैव दृश्यसे न च दृश्यसे ।”

अर्थात्—तुम (शून्य) अतिशय दुर्बोध हो, माया की तरह कभी दृष्टिगोचर होते हो और कभी नहीं भी होते ।

उक्त ग्रन्थके द्वितीय सूत्रमें लिखा है,—

“आकाशमित्र निर्लेपं निष्प्रश्चां निरक्षरामयस्तो पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम् ।”

अर्थात्,—जो तुमको आकाशकी तरह अर्थात् शून्य की तरह निर्लेप, निष्प्रश्च और निरक्षर रूप से दर्शन करता है, वह ‘तथागत’ अर्थात् शून्यत्व को प्राप्त होता है ।

अष्टसाहस्रिक प्रज्ञापारमिताके द्वितीय विचर्त्तमें लिखा गया है—

“सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमाः स्वप्रोपमाः  
कुम्भप्रत्यक्षुद्वोऽपि मायोपमाः स्वप्रोपमाः ।  
प्रत्यक्ष बुद्धत्वमपिमायोपमम् स्वप्रोपमम् । सम्पक् सम्बुद्धोऽपि मायोपमाः स्वप्रोपमाः सम्यक् सम्बुद्धत्वमपि मायोपमम् स्वप्रोपमम् ।”

अर्थात्,—सुगत बुद्ध देवपुत्रोंको कहते हैं,— समस्त धर्म ही माया और स्वप्र की तरह हैं । प्रत्यक्ष बुद्ध, सम्यक् सम्बुद्ध एवं उनके सभी धर्म भी माया और स्वप्रकी तरह हैं ।

सर्व दर्शन-संप्रह नामक ग्रन्थमें सायन माधवने बौद्ध-दर्शन वर्णन करनेके प्रसंगमें १५ वें बाक्यमें इस प्रकार लिखा है—

“माय्यमिकास्तावदुत्तम प्रज्ञा इथमचीकथन् ।  
मिज्जुपाद प्रसारण-न्यायेन ज्ञानभज्जायाभिवानमुखेन

स्थायित्वानुकूलवेदनीयत्वानुगत सर्वसत्यवभ्रमव्याव-  
र्तनेन सर्वशून्यतायामेव पर्यवसानाम् । अतस्तत्त्वं  
सदसदुभयानुभयात्मकचतुर्होटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव ।"

उक्त प्रन्थके २६ संख्यक वाक्यमें भी शून्यके  
सम्बन्धमें ऐसा लिखा गया है—

"केचन वीढ़ा वाहोपु गच्छादिपु आन्तरे पुरुषादि-  
स्कन्धेषु सत्त्वापि तत्रानास्यामुत्तादियितुं सर्वं शून्यमिति  
प्राथमिकान् विनेयानचीकथत् ।"

अर्थात्,—किसी किसी वीढ़मतावलम्बीने वाह्य  
वस्तु गन्ध, आन्तरिक और रूपादि स्कन्धमें, यहाँ तक  
कि 'सत्'में भी अब्रह्म उत्पन्न करनेके लिए—समस्त  
शून्य है—ऐसा प्राथमिक श्रेणीके लोगोंके लिये कहा है ।

शाक्य सिंह बुद्धके सम्बन्धमें भी 'लिलित विस्तार'  
के (बीढ़ प्रन्थ) २१ वें अध्यायमें—शाक्य सिंह बुद्धने  
'शून्य' और 'नैरात्मवाद'-धनुस् द्वारा सांसारिक  
क्लेश-रिपुका विनाश कियाहै—ऐसा लिखा गया है ।  
(“समर्थ धनुर्गृहीत्वा शून्य-नैरात्मवादिनै क्लेशरिपुन्  
निहत्वा ।”) उपर्युक्त बीढ़प्रन्थोंके प्रमाण द्वारा समझा  
जाता है कि महानिर्वाणरूप शून्यवस्तु आकाशकी  
तरह निरक्षर निष्प्रपञ्च है एवं जो प्रपञ्च अर्थात्  
कारणरूप शून्यका कार्य या धर्मज्ञापक है, उसका समु-  
दाय भी शून्य है, तथा वह स्वप्न और मायाकी तरह है ।  
प्रपञ्च ज्ञाणिक होने पर भी इसका मूल कारण “शून्य”  
है । प्रह्लादपारमिता सूत्रमें कहा गया है,—आम्रका  
आनन्द गुण दूर हो जानेसे वह शून्यमें ही पर्यवसित  
हो जाता है । शंकरका निगुर्णा ब्रह्मवाद इसीका नामान्तर  
है । बुद्धका कहना है,—जिसमें गुण या कार्य नहीं,  
वह शून्य है । शंकरका भी कथन है,—जिसमें गुण  
नहीं, वही ब्रह्म है ।

### शंकराचार्यका ब्रह्मवाद

सम्प्रति बुद्धके शून्यवादके साथ आचार्य शंकरके  
ब्रह्मवादकी एकता दिखलायी जारही है । अतः  
उल्लिखित प्रमाणोंके साथ तुलना कर पढ़ना होगा ।  
अपरोक्षानुभूति नामक प्रन्थके ४५ वें श्लोकमें ओपाद  
शंकरने कहा है—

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोन्य न विश्वते ।  
तस्मान् सर्वं प्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत् ॥

४६ श्लोकमें—

ब्रह्मणः सर्वं भूतानि जायन्ते परमात्मनः ।  
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत् ॥

४७ श्लोकमें—

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्घाण्डस्येव हृश्यते ।  
अज्ञानव्येति वेदामृतास्तन्नन्वैव का विश्वता ॥

अर्थात्,—प्रपञ्चका उपादान ब्रह्मके अतिरिक्त  
और कोई वस्तु नहीं है (४५) । परमात्मा ब्रह्मसे ही  
भूत-समूह उत्पन्न हुआ है । सुतरां यह सब (प्रपञ्चभूत)  
भेद समूह ब्रह्म है—ऐसा निर्णय करना चाहिए (४६) ।  
जिस प्रकार भिट्ठीके पात्रका उपादान जल-मिट्टी आदि  
हैं, उसी प्रकार प्रपञ्चका उपादान अज्ञान है । वेदान्तमें  
(?) ऐसा कहा गया है कि उस अज्ञानके नष्ट होने  
पर विश्वत्व या प्रपञ्चत्वकी भावना ही कहाँ रहती है  
(४४) ? अतएव ऐसा देखा जाता है कि शंकरके मतसे  
ब्रह्म जगत् का मूल कारण है । ब्रह्मसे ही सम्पूर्ण  
भूत-समूहकी उत्पत्ति होती है । ब्रह्म ही अज्ञानके हेतु  
जगत्-रूपमें प्रतिभात हो रहे हैं । इस 'हेतु' (कारण) के  
अर्थात् अज्ञानके विनाश या दूर होनेपर ही हृश्यत्व  
(भूत-समूह) विनष्ट होकर ब्रह्ममें पर्यवसित हो  
जायगा । अर्थात् ब्रह्म हो जायगा । विश्व ही द्वैत  
उत्पत्तिरूप भय-होश आदिका आकर है ।

बुद्धदेवने अपने शून्यवाद रूप अख्लसे विश्वक्ले-  
शका विनाश करनेकी चेष्टाकी है—एवं आचार्य शंकर  
ने भी ब्रह्मवादरूप अख्लसे विश्वक्लेशकी ध्वंस कर  
नेका प्रयास किया है । संसार-क्लेश दूर करनेके  
हेतुभूत जैसे शंकरका ब्रह्मवाद है, वैसे ही बुद्धका  
शून्यवाद है । जगत् की प्रतीति नष्ट होने पर एकमें  
शून्य, और दूसरेमें ब्रह्म रह जाता है । अब जगत्-  
प्रतीति नष्ट करनेके उपायके सम्बन्धमें बीढ़ और  
शङ्खके अनुयायियोंका परस्पर क्या विचार है, उसकी  
कुछ कुछ समालोचनाकी आवश्यकता है एवं दोनों  
मतोंका एक्य कहाँ है, यह भी दिखलाना आवश्यक है ।

## बौद्धपतमें मोक्ष का उपाय

मोक्षके उपाय अर्थात्-जगन्नाथ के विनाश करनेवी चेष्टाके सम्बन्धमें बौद्धोंका कथन है,—

“तत् द्विविधं तदिदं सर्वं दुःखं दुखायतनं दुःख-सायद्वेति भाववित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं संपादयेत् । अतएवोक्तं दुःख-समुदाय-निरोध-मार्गाद्विधत्वारः आर्यस्य बुद्धापारमितानि तत्त्वानि । तत्र दुःखं प्रसिद्धं समुदाय दुःख-कारणं तद्-द्विविधं प्रत्ययोपनिवन्धनो हेतुपनिवन्धनश्च ॥”—सायना माधव

सारे विश्वको दुःखमय, दुःखायतन, एवं दुःख-दायक-समझकर उसके निरोधके उपायस्वरूप तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये चेष्टा करनी चाहिए । अतएव दुःख समुदायके निरोधके ४ मार्ग हैं । किन्तु आर्य बुद्धके विचारसे सभी तत्त्व दुःख निरोधके मार्ग हैं । दुःख किसे कहते हैं, यद्यतो सभी जानते हैं । किन्तु सभी दुःखोंका कारण ‘विश्व’ ही है एवं यह कारण दो प्रकारका होता है—प्रत्ययोपनिवन्धन और हेतुपनिवन्धन ।

प्रज्ञापारमिता सूत्र १७ में लिखा गया है, “मार्गस्तमेको मोक्षस्य नास्तन्य इति निश्चयः” अर्थात् प्रज्ञापारमिताको लक्ष्यकर उसका सवाहर रहे हैं—तुम्हीं एकमात्र मोक्षका मार्ग हो, दूसरा नहीं; यह निश्चित है ।

बौद्ध महायान शास्त्राके अनेक ग्रन्थोंमें प्रज्ञापारमिताको मोक्षका एकमात्र उपाय बतलाया गया है । शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके प्रारम्भमें ही इसप्रकार लिखा गया है—

“नैव तेन विना मोक्षं तस्मात् श्रावत्यर्थं आदरात् ॥”

अर्थात्, प्रज्ञापारमिता व्यतीत मुक्ति नहीं मिल सकती । इसलिए आदर पूर्वक उसका अवगत करना चाहिए । उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र भी उक्त वाक्यके पृष्ठपोषक वाक्य मिलते हैं । यथा,—

“या सर्वज्ञतया नयत्युपसमं शम्भैषिणः आवकान् ।

या मार्गज्ञतया जगद्वित्कृप लोकार्थं सम्पादिका ॥

सर्वकारमिदं बद्वन्ति मुनयो विश्वं यथा सङ्घता ।

तस्मै श्रावक-वैषिषत्वगणिनो बुद्धस्य मात्रेनमः ॥”

अर्थात् जिनकी कृपासे सर्वज्ञता प्राप्त होती है, वे प्रज्ञापारमिता ही शान्तिकामी श्रोताओंके समस्त संसार-क्लेश दूर कर देते हैं । वे जानते हैं—किस मार्गमें चलनेसे मोक्ष मिल सकता है । अतएव वे ही

जगन्नाथ कल्याण किया करते हैं । उस श्रावकबोधिसत्त्व बुद्ध प्रज्ञापारमिताको नमस्कार करता हूँ । उस बौद्धशास्त्रोंके प्रमाण-समृद्ध द्वारा देखा जाता है कि मोक्ष अर्थात् शून्यत्व लाभ करनेका उपाय तत्त्वज्ञान या प्रज्ञापारमिता है । प्रज्ञापारमिता कहनेसे बौद्ध लोगका जो विचार है, उसे संक्षेपमें निवेदन किया जा रहा है । प्रज्ञापारमिता सूत्रके प्रथम सूत्रमें प्रज्ञापारमिताका स्वरूप निर्णय करते हुए लिखा गया है—

“निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते ।

या त्वं सर्वान्वयांगि निरवर्थं निरीच्छसे ॥”

‘अर्थात्, हे प्रज्ञापारमिते ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । तुम निर्विकल्प और अमित हो । तुम्हारा सम्पूर्ण अंग अनवश्य अर्थात् निर्दोष है । अतः निर्दोष व्यक्ति ही तुम्हें देखनेमें समर्थ होते हैं ।’ उक्त श्लोकके प्रत्येक शब्दको लेकर विचार करनेसे देखा जाता है कि शङ्करने ब्रह्मप्राप्तिके लिये जिन उपायोंका निर्देश किया है, वे प्रज्ञापारमिताके साथ एक ही जैसा (अभिज्ञ) स्थिर होते हैं । बौद्धोंका और भी भी कहना है कि संसार-क्लेशका पूर्वांक “प्रत्ययोपनिवन्धन” और “हेतुपनिवन्धन” इन दोनों कारणोंके निरोधसे मुक्ति होती है ।

“तदुभय निरोध करणान्तरं विमलोऽनोदयो वा मुक्ति तान्निरोधोपायोमार्गः स च तत्त्वज्ञानं तत्त्व प्राचीनभावनावलाद्वतीति परमं रहस्यम् ॥”—सायन माधव ।

अर्थात्, उक्त दोनों कारणोंके निरोध होनेपर विमल ज्ञानका उदय होता है या मुक्ति होती है । जो उक्त दोनों कारणोंका निरोध करनेमें समर्थ होते हैं, वे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं । प्राचीन भावनाके बलसे ही तत्त्वज्ञान अर्थात् प्रज्ञापारमिता प्राप्त होती है । यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य है ।

क्षणिक जगन्नाथ के यो प्रातिभासिक रजत ज्ञानके उक्त दोनों कारणोंका निरोध या विनाश करने से शून्य-प्रज्ञा या ब्रह्म-प्रज्ञा उदय होती है ‘कारणका’ नाश होने से ‘कार्य’ का नाश हो जाता है—यह स्वतः सिद्ध है । सुतरां बौद्ध मतमें शून्य प्राप्तिका उपाय जगन्नाथीतिके कारणका नाश होना है एवं अमिता अविद्या निर्विकल्प-प्रज्ञाही एकमात्र कारण नाश करनेका उपाय है ।

### आचार्य शंकरके मतानुयार मोक्षका उपाय

आचार्य शंकरने मुक्तिका उपाय निर्देश करने के लिए “केवलोऽहम्” शिर्पक नाम देकर एक पदाकी रचना की है। उससे एक श्लोक उद्धृत किया गया—

“ब्रह्मानिज्ञत्वाविज्ञाने भवमोक्षस्य कारणम् ।

येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्मसम्पदते बुधैः ॥ २॥”  
अपरोक्षानुभूति में—

“त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात् ।

त्यागोऽहि महतो पूज्यः सर्वो मोक्षमयोवतः ॥ १०६॥

अर्थात् ब्रह्मका (ब्रह्म और प्रपञ्चका) अभिज्ञत्व ज्ञान ही भवमोक्ष अथवा संसार मोक्षनका कारण है। इसके द्वारा पण्डित व्यक्ति अद्वितीय आनन्द स्वरूप ब्रह्म सम्पदन किया करते हैं अर्थात् ब्रह्म लाभ करते हैं ॥३॥

चिदात्माका अवलोकन करनेसे प्रपञ्चके रूपोंका त्याग हो जाता है। यह त्याग महद् व्यक्तियोंके लिए पूज्य है, इसी त्यागसे अतिशीघ्र मोक्षमय हुआ जाता है ॥ १०६॥

चिदात्माका अवलोकन या ब्रह्मसे अभिज्ञ चिन्तन आदि उपायोंके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति या मोक्ष लाभ होता है। ब्रह्म-ज्ञान ही विश्वरूप अविद्याके विनाशका कारण है। बुद्धने प्रज्ञाको संसार-हौसे रा का नाश करनेका कारण बतलाया है। बुद्धकी यह प्रज्ञा और आचार्य शंकरका ब्रह्म-ज्ञान एकही चीज है। प्रज्ञा और ब्रह्ममें कोई पार्थक्य नहीं। ऐसा दिलखानेके लिए शारीरिक भाष्य आदि अनेक ग्रन्थों में ऐतरेय उपनिषद्का—“प्रज्ञनं ब्रह्म”—मंत्र उद्धृत कर उक्तमतका सर्वतोभावेन अनुमोदन किया गया है। ऐतरेय उपनिषद् में अन्यत्र भी—“प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्”—“प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा”—ऐसे मन्त्र देखे जाते हैं। उनका शंकरने जो भाष्य किया है तथा सायना-चार्य प्रभृति मनीषियोंने उसे अवलम्बन कर जो कुछ लिखा है, उससे जाना जाता है कि ‘प्रज्ञान’ शब्द का अर्थ ‘निरूपाधिक चैतन्य’ एवं ‘प्रतिष्ठित’ शब्दका अर्थ ‘सर्व-जगत् रज्जुमें सर्व न्याय आरोपित’ से है। “प्रज्ञाने निरूपाधिक चैतन्ये पूर्वोक्तं सर्वं जगत्

प्रतिष्ठितं रज्जुं सर्ववदारोपितम् ।” अतः देखा जाता है कि श्रीशंकरपादने बुद्धके प्रज्ञाको ही अद्विकार कर उसे निरूपाधिक चैतन्य-स्वरूप और उसीको रज्जुमें सर्व आरोप न्याय लक्षणिक जगत् कहा है। इसी प्रज्ञा या ब्रह्मज्ञान द्वारा लक्षणिक या प्रातिभाषिक तात्कालिक जगत् नष्ट होगा और शून्यरूप ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हो जायगा और भी कहते हैं—

“कार्ये कारणता जाता कारणे न हि कार्यता ।

कारणत्वं ततो गच्छेत् कार्याभावे विचारतः ॥”

—अपरोक्षानुभूति १३५:

कार्यमें कारणत्व रहता है, किन्तु कारणमें कार्यत्व नहीं रहता। सुतरां जगत्-रूप कार्यकी लक्षणिकत्व विचार पूर्वक उसका निरोध या अभाव होनेपर ब्रह्म स्वरूप कारणत्व प्राप्त हो जाता है ॥१३५॥

पुनश्च अन्यत्र—

“कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात् कार्यं” विवर्जनेत् ।

कारणत्वं ततो गच्छेत् विशिष्टं भवेन्मुनिः ॥”

कार्यके भीतर कारणको देखकर पीछे कार्यका परित्याग करना चाहिये। कार्य और कारण-इन दोनों में कार्य परित्यक्त होनेसे अवशिष्ट कारणत्व स्वयं प्रकाशित हो जाता है। यही कार्य-कारणका विचार है ॥ १३६॥

बौद्धोंके उदाहृत आनन्दका आनन्द विचारमें भी वही अवशेषपूर्णमें पाया जाता है। यहाँ पाठक वर्ग ही विचारकर देखें कि श्रीशङ्करके कह गये “अवशिष्ट” भवेत्” वाक्यद्वारा शून्यका ही लक्ष्य होता है या नहीं, आनन्दका आनन्द नष्ट होने पर कुछ भी शेष नहीं रहता अर्थात् शून्य ही अवशिष्ट रहता है। सुतरां ‘अवशिष्ट’ शब्द द्वारा शङ्करने प्रचलनरूपसे बुद्धके शून्यको ही लक्ष्य किया है। अतएव मोक्षके उपायके सम्बन्धमें शङ्करने, बुद्धके मायावादसे प्रभावित होकर अपना मत स्थापान करने की चेष्टाकी है—ऐसाकहना शब्द अन्याय नहीं होगा। मोक्षका उपाय निरूपण करनेके विषयमें भी बुद्ध और शंकरका एक ही मत है— स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है।

—कमशः

# शरणागति

दैन्य—दुःखात्मक [मानसिक]  
[ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर]

विद्या के विलास में मैंने समय विताया कर साहस ।  
भजे न तब श्रीचरण कभी, अब शरण एक तुम ही हो, बस ॥  
पढ़ते-पढ़ते हुआ भरोसा ज्ञान सहायक होगा अन्त ।  
आशा विफल हुई, दुर्बल है ज्ञान, ज्ञान अज्ञान अनन्त ॥  
सब जड़ विद्या माया-वैभव भजन तुम्हारे में बाधा ।  
मोह अनित्य जगत में जन्मा, जीव गधा सोइ अराधा ॥  
गधा बना संसार-भार सो मैंने लादा बहुत समय ।  
अबहुँ वृद्ध, अशक्त, न कुछ भी अच्छा लगता है निश्चय ॥  
जीवन हुआ यातना, विद्या हुई अविद्या, उलटा खेल ।  
जलन अविद्या बहुत दे रही, विद्या बनी हृदयकी सेल ॥  
नाथ, तुम्हारे चरण छोड़ बन जग में मेरे और नहीं ।  
भक्ति विनोद छोड़ जड़ विद्या, तब श्रीचरण गहे नितहीं ॥

## यमुनाष्टक

(शंकरलाल चतुर्णवी)

जय जय जमुने मातु महा मुद मंगल दाता ।  
जय ! नाशक अघ ओघ जयति जय माथुर माता ॥  
जय ! जय की लघु भगिनि भातु की प्रिय सुकुमारी ॥  
श्रीपति की शुभ प्रिया दरस तब अति सुखकारी ॥  
हिमगिरि के उत्तुङ्ग शृङ्ग सों कहि जल आवत ।  
ता कल कूज विराज कलिन्दी ! कृष्ण अराधत ॥  
मधुसूदन पतिपाय हुलसि जयमाल पिरावत ।  
हरि-पटरानी बनी पुरी द्वारावति छावत ॥  
जय शुभ्रानन ! सहस ससी सम ज्योति प्रकासै ।  
जय कर-कमल तिहार कलुप कुल निरत विनाशै ॥  
जय पावन पद-पद्म पुष्पमय स्वर्ग नसैनी ।  
जय पद-रज अघ हन्य चराचर कौं सुख दैनी ॥  
जय जननी ! जग करत सदा पावन तब बारी ।  
त्रिविधि ताप नित नसै करै मज्जन नर नारी ॥  
'शंकर' मथुरा जानि प्रिय, लिपटाई निज अंक ।  
जयति पाद प्रभु दायनी, ध्यावत जो नृप-रंक ॥

## गीताकी वाणी

श्रीमद्भागवद्‌गीताके सम्बन्धमें जाननेके लिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि गीता क्या वस्तु है ? इसके बत्ता और श्रोता कौन हैं ? बत्ता और श्रोताका परस्पर संबंध क्या है ? एवं गीतोपदेशका हेतु क्या है ? सर्वप्रथम गीता क्या वस्तु है—इस विषयपर विचार किया जा रहा है। गीता माहात्म्यमें लिखा है—

सर्वोपनिषदो गावो दोमधा गोपाल-नन्दनः ।  
पार्थोवत्सः सुधीभौका दुग्धं गीतामृतम् सहत् ॥

(गी० मा० ६)

**अर्थात्**— श्रुतियाँ गामीखण्ड हैं। उनका दोहन करनेवाले हैं श्रीनन्द गोपके नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र। अर्जुन बछड़ेके रूपमें कलिपत हैं अर्थात् गायका बछड़ा जैसे दूध दूहे जानेका उपाय-खलूप या हेतु होता है, अर्जुन भी वैसे ही गीतोपदेशका उपलक्ष्य या हेतुमात्र हैं, सज्जनवृन्द इसके भोक्ता अर्थात् इसको पान करनेवाले हैं एवं गीताखण्ड असृत ही श्रुतिरूप गामियोंका दूध है। दुहा गया दूध जैसे केवल बछड़ेके पीनेके लिए नहीं होता, बल्कि भगवान्की सेवा अथवा दूसरे दूसरे कार्योंमें व्यवहृत होता है, वैसे ही गीता-असृत अर्जुनके लिए नहीं, अर्जुनको केवल निमित्त मात्र रख कर करुणावरुणालय परमेश्वर ने सारे जीवोंके लिए चिरकालके लिए एक महत् दान कर रखा है। बात ऐसी है कि अर्जुन हमारे जैसे एक बढ़ जीव नहीं हैं। उनको मोह व्यापनेकी कतई भी गुंजाइश नहीं। सर्व-कारण-कारण भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सम्मुख खड़े हैं, फिर भगवान्के पीछे खड़ी रहने वाली माया (क) उनके निकट ही कैसे जा सकती है ? इसका कारण यह है कि जहाँ कृष्ण वास करते हैं, वह स्थान मायाके अधिकारसे बाहर होता है। गीताकी प्रारम्भिक घटनासे यह बात स्पष्ट होजाती है।

महाभारतका प्रलयकारी संग्राम होने जा रहा था। भाई भाईके सामने खून पीनेके लिए खड़ा था। उसीसमय अर्जुन भगवान्से कहते हैं—

‘सेनयोहभयोर्मध्ये रथ स्थापय मेऽच्युत ।’

‘भगवान् ! मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजिए ।’ यहाँ अर्जुनके इन बचनोंमें आङ्गा देनेका भाव भलकता है। किन्तु क्या भगवान् इससे नाराज होते हैं ? नहीं, वे आनन्द पूर्वक अर्जुनकी आङ्गाका पालन करते हैं—

एवमुक्तो हृषिकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोहभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

भीष्म दोषप्रसुखतः सर्वोवाच महीचिताम् ।

उवाच पार्थं पश्यताम् समवेताम् कुरुनिति ॥

(गीता ६।२४-२५)

उपरोक्त श्लोकोंकी इन पंक्तियोंपर विचार करनेसे पता चलता है कि गुडाकेशका अर्थ है ‘निद्रा विजयी ।’ गुडाकाका अर्थ है निद्रा। निद्रा मायाका कार्य है, जो इसके ईश या पति है, वे हैं अर्जुन। जब भगवान्के केवल नामका अवलम्बन करनेसे ही जीव मायाको पार कर जाता है, तब भगवान्के नाम, रूप, गुणलीलाकी सूतिमें सर्वदा अभिनिविष्ट रहने वाले भगवद्भक्त अर्जुनपर वह माया कैसे आक्रमण कर सकती है ? और यदि अर्जुन मायाके अधिकारसे बाहर है तो फिर मोह जो मायाका कार्य है, उनको कैले व्याप सकता है ? जीव मोहके वशमें होकर जड़ शरीर और गृहादिके प्रति ‘मैं और मेरा’ अभिमान करते हैं। अर्जुन भी बढ़ जीवोंके जैसा अभिनय करते हुए कहते हैं—

किं नो राजपेन गोविन्दं किं भोगैर्विलेन वा ।

येषामर्थं कांचित् नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥

त इमेवस्थिता युद्धं प्राणांस्तक्षवा धनानि च ।

(गीता १।३२-३३)

ये उक्तियाँ उन लोगोंके सम्बन्धमें हैं जो देहको ही आत्मा समझते हैं। देह स्वर्वस्व वादियोंका यही विचार है। अर्जुन ऐसे लोगोंका प्रतिनिधित्व करनेका अभिनव करते हैं। वे आगे और भी कहते हैं—

कुलज्ञये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः  
धर्मे नष्टे कुलं कुल्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥

(गीता ११३६)

यहाँ उनके कथनका तात्पर्य यह है कि कुल धर्म ही जीवका सनातन धर्म है। यह भी बद्ध जीवोंका ही विचार है।

यदि अर्जुन बद्ध जीवोंकी तरह ऐसा न कहते तो भगवानके गीतोपदेश वर्णन करनेका हेतु या उपाय ही क्या हो सकता था? भगवान् बद्ध जीवों डारा दीख नहीं पड़ते अथवा उनके लिये भगवान्के साज्जान् श्रीमुखसे निकली हुई वाणियोंको सुननेका सौभाग्य भी असम्भव होता है। किन्तु स्वयं भगवान् अवतारी कृष्ण जब स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब उनकी ऐसी गृह इच्छा होती है कि उनकी इस वाणीका आभ्यकर अविद्या प्रस्त जीव अपनी अज्ञान-राशिको दूर कर नित्यकालके लिए संसारिक दुःखोंसे छुटकारा पावें। इसीलिए भगवत्पार्षद् अर्जुन उनकी इच्छा पूर्तिमें हेतु मात्र हैं। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने उद्घवको, भगवान् कपिलदेवने अपनी माता देवहृतिको और भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवने निज जननी तथा अपने पार्षद् भक्त रूप-सनातन आदि गोम्बामियोंको समय समय पर अपने परम रहस्य-युक्त तत्त्वज्ञानका उपदेश दिये हैं। जगद्गुरु भगवान् शंभुने अपनी शक्ति महामायाके प्रति भगवत् कथाका वर्णन किया था। अतएव अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त करानेके उद्देश्यसे गीताका उपदेश नहीं हुआ, बल्कि उक्त उद्देश्यको अर्थात् भगवत्तात्वको लक्ष्यकर ही भगवान्ने अर्जुनको निमित्त बनाकर कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति आदि उपायोंका वर्णनकर अन्तमें भक्तिकी श्रेष्ठता स्पष्टतः प्रतिपादित की है।

गीताके प्रत्येक अध्यायमें एक-एक योगका वर्णन कर उसके अन्तमें पुणिकामें मोक्षयोगका उपदेश दिया गया है। जब जीवका सांसारिक विषाद् उपस्थित

होता है, उस समय यदि उपयुक्त भगवत् तत्त्वज्ञेता साधुके सङ्गमें संसारका स्वरूप, जीवका स्वरूप और भगवत्-तत्त्वरूपका ज्ञान लाभकर भगवत् प्रीतिका एक-मात्र उपाय भगवानकी भक्तिका अवलम्बन करता है, तो वह संसार-दुःखसे, शीघ्र मुक्ति लाभ कर परमा शान्ति लाभ करता है। गीताका यही निष्कर्ष है।

विभिन्न प्रकृतियोंके जीव गीताका पाठ करते हैं। उनकी धारणाएँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती हैं। अधिकांश गीता पाठोंकी धारणानुसार कर्म ही गीताका चरम उद्देश्य है। उनमेंसे कुछ ज्ञानी ज्ञानको, कोई-कोई अष्टांग योगको एवं सर्वथेषु ज्ञानी तथा भाग्यशाली व्यक्ति ही भक्तिको गीताका चरम प्रतिपाद्य सिद्धान्त निर्णय करते हैं। सत्संगमें गीताकी आशो-पान्त आलोचना करनेसे ही गीताका वास्तविक अर्थ हदयज्ञम हो सकता है।

वेदान्तके प्रथम सूत्रमें जिस ब्रह्म जिज्ञासाका प्रसङ्ग आया है, वैसी जिज्ञासा कौन कर सकता है?— श्रुति इसका उत्तर देती है—“शान्त-दान्त-उपरतस्ति-तित्तुः श्रद्धान्वितो भुत्वा आत्मनि एव आत्मनं परयेत्” अर्थात् शान्त, दान्त, उपरत, तित्तु और श्रद्धायुक्त होनेसे आत्माका आत्मामें दर्शन सम्भव होता है। ‘किं नो राज्येन गोविन्दं’ (गीता १३२) श्लोकमें अर्जुनका शमदम गुण, अपि ब्रैलोक्य राज्यस्य हेतोः किन्तु महीकृते’ (गीता १३५) श्लोकमें इहकाल और परकालके विषय भोगोंसे वरति, ‘अेयो भोक्तुं भैदयं अपीह लोके’ (गीता २५) श्लोकमें द्रुन्दुमहिष्णुतालक्षणा तितित्ता एवं यन्द्वयैः स्यानिश्चितं ब्रह्मितन्मे’ (गीता २७) श्लोकमें गुरुके वचनोंमें हृषि विश्वासलक्षणा श्रद्धा प्रकाशित होती है। शम-दम शून्य व्यक्तिका गीतापाठ भस्ममें घृताहुतिके समान व्यर्थ है। अतएव— तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्। समित्पाणिः ओत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।’ (मुण्डकोपनिषद् १२१२) ‘आचार्यवान् पुरुषोवेद्’ (छान्दोग्य ३१४२) आदि श्रुति वचनोंके अनुसार ओत्रिय (वेदज्ञ) और ब्रह्मनिष्ठ गुरुके निकट गमनपूर्वक उनके शरणागत होनेसे भगवत्-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त होता है। गीतामें भी कहा गया है—

तद्विदि प्रशिपातेन परिवशनेन सेवया ।

उपदेवयन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्ववद्विशिनः ॥

(गीता ४३४)

**अर्थात्**—तत्त्व-ज्ञान लाभ करनेके लिये तत्त्व-दर्शी गुरुके निकट गमन कर दण्डवत् प्रणाम और स्वच्छभाव द्वारा सन्तुष्ट कर उनसे तत्त्व सम्बन्धी प्रश्न सिज्जासा करो । वे तुम्हे वास्तविक ज्ञानका उपदेश करेंगे ।

अतएव भगवद्वत् अर्जुनने प्रथम अध्यायमें जिन विचारोंको व्यक्त किया है, वे सब बद्धजीवोंके विचार हैं; अर्जुनने केवल कहनेका अभिनवमात्र किया है । प्रथम अध्यायका सारांश यह है कि हम संसारको ही सार समझ कर अपने-अपने आत्मीय स्वजनोंकी सेवाको ही परम धर्म, सनातन धर्म आदि विचार करते हैं । हम सोचते हैं कि संसार-धर्मका त्याग करनेसे सनातन कुलधर्मका (?) नाश हो जायगा । ऐसी अवस्थामें वर्णसङ्कर उपनिषद्से पितृजनोंके पिण्ड, तर्पणादिक्रियाओंहाँ लोप हो जायगा । किन्तु ये कुलधर्म अनित्य और तात्कालिक होते हैं । श्रीमद्भागवत् इस कथनकी पुष्टि करते हैं—

देवर्विभूतासनुयां पितृणां  
न किङ्करो नायमृणो च राजन् ।  
सर्वात्मना यः शरणं शरणं  
गतोमुकुन्दं परिहत्य कर्त्तम् ॥ (क)  
(श्रीमद्भा० १११४१)

हम जन्म प्रहणके बादसे जिन कर्मोंका आचरण करते हैं, उनमें अधिकांश समय पाप कर्मही होते हैं । यथापि ये पापकर्म इतने अधिक होते हैं कि हमारी गणनाके बाहर होते हैं तथापि मनुसंहितामें गृहस्थ लोगोंके द्वारा किये गये पापकर्मोंके लिये पाँच प्रकारके पापोंका उल्लेख किया गया है—

पञ्चशून्या गृहस्थस्य चुल्ली पैषशूल्यस्कर ।  
कण्ठनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तु वाह्यन् ॥

(मनुसंहिता ३।६८)

हे राजन् ! जो मनुष्य अहंभावहा परित्याग करके सर्वतोभावेन शरणागतवत्सत्त्व भगवान् मुकुन्दकी शरणमें आगया है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुदुम्बियों तथा अनिधियोंके ज्ञानसे उत्तरण हो जाता है । वह किसीके अधीन, किसीकासेवक या किसीका ज्ञानी नहीं रहता ।

**अर्थात्**—संसारके नित्य व्यवहारमें आनेवाले कर्मोंमें शिल-लोड़ा, चूल्हा (अग्नि), जलके घड़े (जल) देकी अथवा ओखल-मुपल और भाड़—इन पाँच वस्तुओंसे अनेक प्राणियोंकी हिंसा होती है । इन पापोंसे मुक्त होनेके लिये पञ्च-यज्ञकी व्यवस्था दी गई है । पञ्चयज्ञ ये हैं—(१) देवयज्ञ, (२) ऋषियज्ञ, (३) पितृयज्ञ, (४) नृयज्ञ, (५) भूतयज्ञ । गृहस्थोंके लिये इस पञ्चयज्ञका करना आवश्यक है । यदि वे इस यज्ञका याजन न करें तो उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति न होगी । किन्तु श्रीमद्भागवतके उपर्युक्त श्लोकमें कहा गया है कि जो काय, मन और बचनसे श्रीहरिके शरणमें आगये हैं, उनके लिये ये पञ्चयज्ञादि उपरण नहीं रहते । गीताके अन्तिम श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण ने भी प्राञ्जल, सरस और मुहूर शब्दोंमें इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए जीवोंको आश्वासन दिया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणंवज ।

अहं त्वा सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता १८।६६)

भगवान्के श्रीचरणकमलोंमें शरणागत होनेसे अन्यान्य कर्त्तव्य-कर्म नहीं किये जानेपरभी कोई पाप नहीं होता । करुणामय भगवान्की कृपासे उन कर्मोंके नहीं करनेसे जो पाप होता है, उससे मुक्ति हो जायेगी । ऐसी आश्वासपूर्ण अभयवाणी है । तथापि इस भगवद्वाणी पर जीवोंका विश्वास नहीं होता । जब अर्जुन ऐसे ही बद्धजीवों जैसा अभिनय करने पर कटिवद्ध होते हैं, तो भगवान् उन्हें समझते हैं—‘कातर न होओ, तुम्हारे कातर होनेका मूल और एकमात्र कारण है—तुम्हारे हृदयकी दुर्वलता । तुम इसे परित्याग करो ।’

प्रथम अध्यायका दूसरा तात्पर्य यह है कि हिंसा-शून्य और दयालु चित्त नहीं होनेसे तत्त्व जिज्ञासा करनेका भाव चित्तपर उद्दित नहीं होता ।

भगवान्ने अर्जुनको विषादप्रस्त देखकर उनके हृदयदौर्बल्य भावको दूर करनेके अभिप्रायसे कहा कि

अर्जुनका चित्त अभी कुलधर्ममें अभिनिविष्ट है। इसलिये उसका ज्ञात्रियकुलोचितधर्म है—युद्धकरना। युद्ध करनेके बदले भिज्ञा-वृत्तिका अवलम्बन करना उसके लिये उचित नहीं। ऐसा करनेसे उसके स्वाभाविक ज्ञात्रधर्मकी हानि होगी। तब अर्जुन और अधिक वितर्क करनेमें असमर्थ होकर भगवानके शरणागत होकर बोले—

कार्ययदीयोपहत स्वभावः

पृच्छामि त्वा धर्म-संमृद्ध चेता ।

यच्चेयः स्याज्ञिशिचर्त त्रहि तन्मे

शिष्यस्तेऽर्थ शापि मां त्वा प्रपञ्चम् ॥

(गीता २१)

'कृपण' शब्दका साधारण अर्थ है कंजूख व्यक्ति; किन्तु उपनिषद्में इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—

'यत्तद्वरं गार्गी अविदित्यास्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः'  
(३० आ० शा० १०)

अर्थात् जो अक्षर ब्रह्मको बिना जाने इस संसार-से चला जाता है—मर जाता है, वह कृपण है। सुतरां तत्त्वज्ञानमें हीन कृपण होनेके भावको कर्पण्य कहते हैं। तत्त्व-ज्ञानके अभावमें हमारा आत्म-स्वभाव आच्छादित रहता है। जीवका स्वभाव है—भगवत् सेवाकरना। किन्तु धर्मके विषयमें चित्त मोहित होनेपर संसार-धर्मवी ही प्रधानता लद्य होती है। भाग्यवश सत्संग होनेपर भगवत्कृपा प्राप्त किसी महापुरुषकी बाणीसे जब जीवका धर्म-अधर्म भाव दूर हो जाता है तो वह अर्जुनकी तरह वास्तव-मंगल जानेके लिये उपयुक्त गुरुका शरण ग्रहण करता है।

(कमशः)

—त्रिदिवि स्वामी श्रीमद्भक्तिरुद्रे श्रीती महाराज

## आधुनिक भगवद्वर्णन

आजकल एक तरफ जैसे नास्तिकता बढ़ती जारही है, वैसे ही दूसरी तरफ कुछ आदमी अपनेको इतना प्रत्यक्षदर्शी मानते हैं कि वह हरएक बातमें भगवानको साज्ञात् दर्शन करनेकी दावा करता है और इसके द्वारा संसारको प्रभावित करके अपनी मानप्रतिष्ठा और बढ़ाईको बड़ा चढ़ा कर जीवनको सफल और धन्य मानता है। एक दिशामें विश्वासका पूर्ण अभाव; द्वितीय दिशामें, अपना विश्वास हो या नहीं, परन्तु दूसरेको विश्वास दिलानेके लिये एकान्त प्रयत्न। इन दोनों तरहके आदमियोंमें किससे संसारका उपकार या अपकार होता है अथवा इससे उनका अपना कल्याण कितना होता है, यह एक भावनाका विषय बन जाता है।

जब कोई आदमी कुछ करता है और उसका कल उसके अपने ऊपर ही सीमित रहता है, तो यह कहा जासकता है कि उसमें दूसरेको कुछ कहकर समालोचना करनेका अधिकार नहीं है। लेकिन जब

उस कामका प्रभाव दूसरेके ऊपर पड़ता है, या उससे समाज अथवा मनुष्यजाति प्रभावित होती है तो कोई कारण नहीं कि उस विषय पर कोई कुछ नहीं कहे। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और हरेक आदमी समाजके लिये जिम्मेदार है। इसलिये यदि कोई अपनी भी हानि पहुँचावे तो वह समालोचनाके योग्य है—समाजको उसका विचार करनेका अधिकार है। शरीरका एक अंग विगड़ जानेसे जैसे समस्त शरीरको दुख होता है, वैसे ही एक आदमीके दोष करनेसे सारे समाजकी हानि होती है।

जो, भगवत् या भगवत् शक्तिके ऊपर आस्था नहीं रखता है, वह तो नास्तिक रूपमें सर्व विदित है, और यहभी सभी जानते हैं कि भगवत् सम्बन्धी कोई भी बात उसके पास नहीं मिलेगी। अतः संसारमें जो सरल और ईश्वर विश्वासी लोग हैं उनके लिये वे नास्तिक लोग उतने अनिष्टकर नहीं हैं। क्योंकि इनसे वे लोग दूर रहते हैं। जिनका भगवान्‌में कुछ

विश्वास है, वे समय-समयपर किसी-न-किसीके पास जाकर बैठते हैं और उनसे कुछ जिज्ञासा करके अपने मनकी इच्छा प्रगट करते हैं। ऐसे विश्वासी लोग साधारणतः दो प्रकारके होते हैं। एकतो वे हैं जो हरेक बातपर खूब विचार करते हैं और कोई बात सुनकर ही उसमें विश्वास नहीं करते, दो-चार सज्जनोंसे पूछताछ करके उसकी सत्यताका निर्णय करनेका प्रयत्न करते हैं। और दूसरे वे हैं, जो विचार का आश्रय न लेकर हठात् किसी बात पर विश्वास कर लेते हैं। इन लोगोंमें ऐसी प्रकृतिके भी बहुत हैं, जो भगवत् सम्बन्धी चमकीली चटकीली बातें सुनना पसन्द करते हैं और ऐसी बातोंपर उनको बहुत ही जलदी विश्वास हो जाता है। इस दूसरे ढंगके आदमी इतने सरलविश्वासके कारण बहुधा धोखा खाते हैं, अन्तमें वे भी अविश्वासी बन जाते हैं।

यद्यपि इन लोगोंकी अपनी त्रुटियाँ बहुत अधिक हैं, तो भी जो लोग कालनिक या मिथ्या अनुभव या प्रत्यक्ष दर्शनका बहाना बनाते हैं और उन्हीं सरल विश्वासी लोगोंके सामने तरह-तरह भगवद्दर्शनकी कहानी सुनाकर अपना महत्त्व दिखलाते हैं, वे सर्वथा निदनीय हैं।

जब कोई भी द्वयकि ईश्वर संबंधी अनुभव बताने लगता है, तो सुनने वालेको इस बातको पहले याद रखना चाहिये कि भगवदनुभव या दर्शन कोई मामूली बात नहीं है, और जिनको वह अनुभव या दर्शन होता है, वे सभा समितियोंमें उस बातपर भाषण नहीं देते अथवा डंका पिटवा कर प्रचार नहीं करते हैं। शास्त्रमें तो ऐसा कहा गया है कि जिनको ईश्वरका अनुभव हो जाता है, वे चुप हो जाते हैं और जो लोग अनुभवकी बातें करते हैं, वे कुछ भी नहीं जानसके हैं। प्रकृतिके नियममें हम देखते हैं कि घड़ेमें जब पानी पूर्णलप्से भरजाता है तो उसकी आवाज बन्द हो जाती है; मोतियोंकी सीप जबतक अपना मुँह खुला रखती है तबतक उसमें मोती होनेकी कोई आशा नहीं दिखाई देती है। लेकिन त्वाति नक्षत्रकी चूँद पड़ते ही वह अपना मुँह बन्द कर लेती है। यह भी सर्वजन विदित बात है कि जब किसीको कोई बहुमूल्य द्रव्य मिल जाता है

तो वह किसीसे कहने की तो बात ही क्या, ऐसा बातना बनाता है, मानो वह नितान्त दरिद्र और हीन है। यदि सांसारिक वस्तु प्राप्त करनेसे ही ऐसी बात होती है, तो पारमार्थिक प्राप्तिकी तो बात ही क्या? जब प्रकृतिका नियम ही ऐसा है, तो जो लोग रास्ता-घाटमें जहाँ तहाँ भागवद्दर्शनकी बातोंकी रट लगाते हैं अथवा पुस्तकोंमें लिख कर छपवाते हैं, वे कितने सत्यवादी हैं, यह बात विज्ञनोंको विचारणीय है। वे लोग या तो पूर्ण मिथ्यावादी प्रतारक हैं, अथवा मस्तिष्क विकारजनित कोई अद्भुत स्वप्न देखकर अथवा भ्रांत कल्पनाको स्त्रीय अनुभव मान कर ऐसा कहते हैं। यदि उन लोगोंको शास्त्र या व्यवहार संबंधी कुछ भी ज्ञान होता तो वे भ्रममें कभी नहीं पड़ते। साधारण आदमी “अनुभव” शब्दका जिस अर्थमें प्रयोग करते हैं, शास्त्रके “अनुभव” का तात्पर्य उसमें सम्पूर्ण रूपमें पृथक् है, उसका स्थान बहुत उच्च है और साधारण जनों लिये उसकी प्रति सुदूरपराहत है। जिन लोगोंका मन क्रमशः भगवान्‌में लग जाता है उनके बाहरी चाल-चलन, बोली, भाषा और व्यवहारमें भी परिवर्तन होने लगता है। मायिक वस्तुमें आसक्ति, प्रतिष्ठाकी आशा, स्तुति-निन्दा से विचेष, पर-निन्दामें प्रवृत्ति, निषिद्धाचरणमें इच्छा, स्वानुभवका समाजमें प्रकाशन इत्यादि बातें उनमें नहीं पाई जाती हैं। उनके दर्शन मात्रसे ही सबको आनन्दका अनुभव होता है। उनका सत्संग बरनेसे दुर्गुण-समूह समूल विनष्ट हो कर सद्गुणोंका प्रकाश होने लगता है। अगर ये लक्षण किसीमें दिखाई न दें, तो निःसंदेह इस बात को कहा जा सकता है कि उसमें भगवान्‌का अनुभव होना एक कपोल-कहित बात है।

मुझे एक दिन एक सज्जनने एक अपोंजी किताब दिखलायी जिसमें एक भारतीय अपने भगवद्दर्शनकी कहानी लिख डाला है,—

“One day in a dream I saw lord Krishna along with mother Radha. Both of them were dressed like cowherds. I found them sitting on a throne in the room of worship. Lord Krishna had put on only one shoe in

one foot while other had none. I was surprised to see them dressed in such a strange way. Immediately, I turned my face towards the stair case. I found lord Krishna coming after me alone. While we were in seclusion, he said to me 'What do you want ?'

'I want only an income of Rs 150/- per month and nothing else.'

'You will have this desire of yours fulfilled. you are advised to observe fast on every Tuesday'

'As lord Krishna had granted me an income of Rs 150/- per month so I got the job of a liberarian at Harcourt Butter Secondary School for Rs. 150/- per month'

इसका तात्पर्य यह है कि एक दिन स्वप्रमें उनको कृष्ण और राधाजीने दर्शन दिया और पूछा, वह क्या चाहता है ? उसने कहा कि हर महीना १५०) और कुछ भी नहीं, कृष्णने कह दिया अगर वह प्रति मंगलवार उपचास रखे तो प्रति माह १५०) मिलने रहेंगे । उसने ऐसाही किया और तबसे उसे १५०) महीनेकी नौकरी मिल गई ।

बड़ी रोचक है कहानी । आरव्योपन्यास (Arabian Nights) को भी मात कर दी है इसने । आज कलकी बेकारी समस्या (The problem of un employment) समाधानके लिये अगर सरकार ऐसे महानुभावोंका सहारा ले ले तो काम बहुत आसान हो जाय ।

शास्त्र और महदनुभवके साथ उपरोक्त बातोंकी कितनी समता है, इस विषयमें जानकार लोग समझ सकेंगे । लेकिन साधरण लोग इससे सिवाय नुकसान और कुछ भी प्रदृष्ट नहीं कर सकेंगे । उनका ख्याल इतना ही रह जायगा कि भगवान्का सामर्थ्य इतना ही है—महीना १५०) देना,—नहीं तो और कुछ अधिक मात्रा १५५) ही सही, है तो वह यहाँ तक ही ?

धन्य ऐसा कृष्ण दर्शन ! और धन्य है वह कृष्णके दानका परिमाण !! और सबसे धन्य तो है इस दान का मांगने वाला । अहमुकी कितनी विडम्बना है—“Lord” कृष्णसे सिर्फ इतनी ही चाहना । यह भी एक भारी रहस्योदयाटन “Mysteries unveiled” है ।

ये बातें ठीक ऐसी ही हैं जैसा कि मार्गमें जादूगर खेल-उमाशा दिखाता है । जादूगर जिधर हाथ पसारता है, उसके हाथोंमें रूपये आ जाते हैं—बेशुमार रूपये, लेकिन दुख की बात यह है कि इतने रूपये हाथ में होते हुए भी पेटकी पूर्ति उन रूपयोंसे नहीं होती । ऐसे ही यहाँ पर “Lord Krishna” जादूगरका रूपया है । सोलह आना धोखा है । ओता और दर्शक ऐसे भगवद्वर्णनका चमत्कार, चमत्कार तक ही सीमित रहते । उसमें बास्तविकता दृढ़ है—यह अनुरोध है ।

लेकिन जादूगरको तमाशा दिखाना कोई दोषकी बात नहीं है । क्योंकि आखिर वह तो खेल ही है, उसमें सत्यता हो या नहीं, मनोरंजन तो होता ही है । परन्तु परमार्थके नाम पर खेल तमाशे करना और सच्चे सरल विश्वासी लोगोंको ठगना इतना बड़ा अपराध है जो किसीभी हठिसे लक्ष्य नहीं है । धार्मिक या सामाजिक किसी भी तरफसे ऐसे व्यक्तियों की कटु समालोचना बाल्फनीय है, नहीं तो धीरे-धीरे इन लोगोंकी इसी प्रकार प्रतारणा करनेकी प्रवृत्ति बढ़ती ही जायगी और समाजको इसका कुफल भोगना पड़ेगा । विचारवान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इस बात पर ध्यान दें ।

संसारमें ऐसे बहुत ही कम आदमी हैं जो अपने विषयमें सत्य बात सुनना चाहते हैं । मैं नहीं जानता कि कितने आदमी मेरी इस बात पर सहमत होंगे । लेकिन बात ऐसी ही है । एक भक्त, कथा सुनते सुनते निद्राके बशमें ही जाते हैं । आप उनसे यह कह दें तो उनको शायद ही अच्छा लगेगा । एक सज्जन, दाता है, लेकिन कटुभाषी भी, यदि उनके सामने कोई यद कह दे तो उन्हें बुरा लगता है । हरेक आदमी आपही इस बातको मालूम कर सकता है कि अपनी त्रुटि सुननेमें कैसा अनुभव(यहाँ पर “अनुभव” शब्दका अर्थ देखिये ) होता है । और एक बात यह

भी है कि अपनी भावनानुकूल वात सभी सुनना चाहते हैं, पर चिपरीत वात—चाहे वह कितनी ही सच्ची वयों न हो, अच्छी नहीं लगती है। कोई पुरुष जिसके मनमें संसारके नाना प्रकार सुखोंवयकी कल्पना उपस्थित है, किसी विज्ञ ज्योतिषीके पास जाता है। पंडितजी गणना कर देखते हैं कि उस सज्जनका भविष्य-जीवन दुःखमय है। यदि वह उस वातको खुल कर कह दे, तो उसका प्रभाव वया होगा? वह पंडितजीकी वात पर विश्वास ही नहीं करेगा। चित्त तो उसका जुनब अवश्य हो जायगा और पंडितजीकी दक्षिणा भी ऐसी ही मिलेगी।

यह भी एक कारण है कि बोलनेवाला भी निरपेक्ष वात कहनेमें भिन्नता है। श्रोताका मनोरंजन करना ही वक्ताका काम रह जाता है। भगवन् कथा सुनने वालोंमें भी यह वात कभी कभी देखी जाती है। वे यथार्थ तत्त्व सुनने जाते हैं, लेकिन अपनी भावनानुकूल चमक इमककी वात सुनकर खुश हो जाते हैं और भ्रांत विश्वास कर लेते हैं। सुतरां श्रोताओंको भी इस विषयमें बहुत सतर्क होना चाहिये। अगर सुनने वाले केवल श्रुतिमुग्धकर वातही सुनना चाहेंगे तो उनके प्रतारणका दायित्व उनपर ही होगा।

भगवदर्शनका दावा करनेवाले तो आज-कल बहुत ही मिलते हैं। लेकिन इनसे भी अधिक पहुँचा हुआ एक श्रेणीका आदमी और दिखलाई देता है जो अपनेको भगवान्का साक्षात् अवतार कहकर परिचय देता है और प्रचार करता करता है। यदि उससे यह प्रश्न किया जाता है—“आप अवतार हैं, इसका वया प्रमाण है?” तो वह जवाब देता है—“मेरी वात ही प्रमाण है, इस पर विश्वास करो, वादमें समझोगे”। ऐसा प्रमाण सभी दे सकते हैं। और ऐसा करते रहे तो विश्वास करने वालोंकी संख्यासे अवतारोंकी संख्या बहुत अधिक हो जायगी।

ऐसी प्रवृत्ति या भ्रांति क्यों होती है, इसके विचारका निष्कर्प यह है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो साधन करते समय पहले-पहल साधनका कुछ फल स्वरूप चमत्कार देखते हैं और उसीकी ओर ध्यान देकर अपनेको सिद्ध समझने लगते हैं। इतनाही नहीं, वे प्रतिष्ठाके लोभसे उसका प्रचार भी करते हैं। अंतमें फल यह होता है कि वे साधन छोड़ देते हैं, धीरे धीरे

कुछ रुले जानेपर भी उनको प्रतिष्ठाका लोभ उत्तरोत्तर प्रवल होता जाता है और वे उसके प्रचारमें ही ज्यादा जोर देते चलते हैं। धीरे-धीरे कुछ सरल विश्वासी लोग उनके अनुयायी बनते हैं। यह साधककी पतनावस्था है। अगर इसी समय उस साधकका भाग्य-वश उच्च अधिकारियोंका संग मिलता है तो वह फिर सुधार जाता है, पुनः साधनमें जोर देता है, और लोगोंका मनोरंजन न कर अभ्रान्त सत्यका प्रचार करता है। लेकिन ऐसा भाग्य होना बहुतही कठिन है।

दूसरे प्रकारका साधक ऐसा होता है जो साधन करते करते हठात् भगवान् या साधुओंके सास अपराध कर बैठता है जो कि उसकी हठिमें नहीं आता। धीरे धीरे वह अपराध बढ़कर उसकी बुद्धिको विगड़ देता है। तब अहंकारमें आकर वह अपनेको भगवान् मानने लगता है। ऐसा साधक भी प्रतिष्ठाके अधीन हो जाता है और सबके सामने अपनी अलौकिक शक्तिका अनुभव-फल प्रकाश करनेमें तत्पर होता है और लोकसंग्रह करता है।

तीसरे प्रकारका व्यक्ति कोई साधक नहीं है लेकिन प्रारम्भसे ही प्रतारक (धूर्ता) का पाठ पढ़ने लगता है और क्रमशः चालवाजीमें पक्का होकर अपनी दैवी शक्तिकी सूची दुनियामें बाँट देता है। इनके प्रचार करनेमें उसे बहुत अनुयायी मिल जाते हैं और वे लोग क्रमशः एक सुसंठित संस्था बना कर लोक समाजमें पारमार्थिक शिक्षा प्रचारक बन जाते हैं।

रात्से अपूर्व वात यो वह है कि आजकलका शिक्षित समाजभी ऐसी वातों पर बहुत जल्दी विश्वास कर बैठता है। आपात् मधुर वाणीसे वह पूर्ण मुख होकर अपनी विचार शक्ति खो बैठता है, अथवा विचार करनेका परिश्रम उठाना नहीं चाहता। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि गम्भीर विषय समझनेके लिये गहरे विचारोंकी आवश्यकता होती है। यदि शिक्षित समाज भी विना विचार किये गड़ालिका प्रवाहमें बहने लगेंगे तो साधारण आदमीकी तो वात ही वया? इस लिये आशाकी जा सकती है कि विद्वान् लोग इस पर विशेष ध्यान देंगे, और निरीह सरल सज्जनोंको प्रतारकोंसे वचा कर सत्य बस्तुके सम्मान से संसारका कल्याण करेंगे। (श्रीरामेवाचा एम. ए.)

## जैव-धर्म

( पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या ४, पृष्ठ ६६ के आगे )

### ( तृतीय अध्याय )

नैमित्तिक धर्म असंपूर्ण, हेय, मिथ्र और अचिरस्थायी है

एक दिन एक पहर रातके बाद संन्यासी महाराज हरिनाम गान करते-करते श्रीगोद्रमके उपचनके एकांतमें ऊँची जगह पर बैठकर उत्तरकी ओर देखने लगे। उस समय पूर्णचन्द्रका उदय हो चुका था। श्रीनवद्वीप-मंडलकी अपूर्व शोभा हो रही थी। थोड़ी ही दूरपर श्रीमायापुर नयनगोचर होने लगा।

संन्यासी महाराज कहने लगे,—“आहा ! यह तो मैं एक विचित्र आनंदमय धाम देख रहा हूँ। वृहत्-वृहत्, रत्नमयी अद्वालिकाएँ, मन्दिर और तोरण-समूह अपनी किरण माला विस्तार कर जाह्नवाकूलको उज्ज्वलित कर रहे हैं, अनेकों स्थानोंपर हरिनाम संकीर्तनका शब्द तुमुल होकर गगन-मंडलको जैसे भेद कर रहा है। नारदके समान कितने ही सैकड़ों भक्त वीणा बादन कर नामगान करते हुये नृत्य कर रहे हैं। एक तरफ श्वेतशरीर देवदेव माहादेव हाथमें ढमरु लिये “हा विश्वभर दया करो” कह कर तांडव नृत्य करते करते पछाड़ खा रहे हैं। दूसरी तरफ चतुर्मुख ब्रह्म बैठकर वेदवादी ऋषियोंकी सभामें—

महाप्रभुवें पुरुषः सत्त्वस्यैषः प्रवर्त्तकः ।

सुनिर्मलमिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्यय । (क)

( श्वेता श्वेतर उपनिषद्-३।१२ )

—यह वेद मंत्र पाठ करके इसकी निर्मल व्याख्या कर रहे हैं। कहीं हंद्रादि देवगण “जयप्रभु गौरचन्द्र, जय नित्यानन्द” कहकर उछल-कूद रहे हैं। पक्षीसिंह डालोंपर बैठकर “गौर निताई” की पुकार कर रहे हैं। भग्नर गौर नामरस पानमें मत्त होकर पुष्प उद्घानमें

चतुर्दिक् गुंजन कर रहे हैं। पक्षीतिवेची गौर रसमें उन्मत्त होकर सर्वत्र अपनी छटा विख्येर रही हैं। अहा ! दिनमें जब मैं श्रीमायापुरका दर्शन करता हूँ तब तो यह कुछ भी नहीं देख पाता। आज यह क्या देख रहा हूँ ? तब श्रीगृहदेवको स्मरण करके कहने लगे—“प्रभो ! आज मैंने जाना कि आपने कृपा करके मुझे अप्राकृत मायापुरके दर्शन कराये हैं। आजसे मैं श्रीगृहचन्द्रका निज जन कह कर अपना परिचय देनेका एक उपाय करूँगा। मैं देखता हूँ कि इस अप्राकृत नवद्वीपमें सभी तुलसीकी माला, तिलमुख और नामांकित उत्तारीय धारण किए हुए हैं। मैं भी ऐसा करूँगा।”

कहते कहते संन्यासी महाराजकी एक प्रकारकी अचेतन अवस्था हुई। थोड़ी देरमें ही उन्हें फिर होश आया। ज्ञान तो हुआ, किन्तु वह अपूर्व चिन्मय हश्य किरनयनगोचर न हो सका।

तब संन्यासी महाराज ने रोते-रोते कहा,—“मैं बड़ाही सौभाग्यशाली हूँ, क्योंकि श्रीगृहकी कृपा लाभ-कर ज्ञानभर श्रीनवद्वीप धामके दर्शन कर लिए।”

दूसरे दिन संन्यासी महाराज अपना दंड जलमें विसर्जन कर गलेमें त्रिकन्ठी तुलसीकी माला और ललाटपर ऊँचुँडु धारण करके, “हरि-हरि”, कह कर नृत्य करने लगे। गोमद्रवासी वैष्णवगण उनका अपूर्व नृत्य वेश और भावको देख कर उन्हें धन्य धन्य कह कर दंडवत् प्रणाम करने लगे।

( क्रमांकः )

(क) यह पुरुष निश्चयही महान् प्रभु अर्थात् महाप्रभु हैं। वे ही अन्तःकरण अर्थात् त्रुदि-त्रुतिके प्रवत्तक हैं। उनकी कृपासे सुनिर्मल शांति प्राप्त होती है। वे ज्योतिस्वरूप अर्थात् कनक-कांतियुक्त एवं अन्यथा ( इस-हृदिशून्य, प्रेम-मय हैं। )